श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

॥ आल्वार-वैभव ॥

श्रीकाञ्ची प्रतिवादि भयङ्कर अण्णङ्गराचार्य स्वामि विलिखित
संस्कृत दिव्यसूरिकथामृत का

हिन्दी अनुवाद

कासारयोगि-शठकोप-कलिद्विडादिसद्दिव्यसूरिवर-वैभवमप्रमेयम् ।
पूर्वार्यवर्यविशदीकृतवर्त्मनैव गीर्वाणवाङ्मयमिदं कलयामि साधु ॥

॥ अवतारिका ॥

परम कारुणिक श्रियःपति श्रीमन्नारायण भगवान उभयविभूतिनाथ कहलाते हैं। नित्यविभूति, लीलाविभूति ये दोनों उभयविभूति कही जाती हैं। यह संसार मण्डल लीलाविभूति कहलाता है। श्रीवैकुण्ठलोक नित्यविभूति कहलाता है। उसी की महिमा के विषय में यह श्लोक सुप्रसिद्ध है कि "यद्दूरे मनसो यदेव तमसः पारे यदत्यद्भुतं यत्कालादपचेलिमं सुरपुरी यद्गच्छतो दुर्गतिः। सायुज्यस्य यदेव सूतिरथवा यद्दुर्ग्रहं मद्गिरां तद्विष्णोः परमं पदम्"। (अर्थ) "जो मनसे भी चिन्तन किया जासकता नहीं, जो प्रकृति के भी उस पार में रहता है, जो अत्यद्भुत है, जो काल से विनाश को नहीं प्राप्त होता है, जहाँ जाने वाले को देवलोक भी नरक के समान दिखाई देता है, जो सायुज्यमुक्ति की जन्मभूमि है, अथवा जो मेरी वाणी के बाहर है, वह वस्तु श्रीमन्नारायण भगवान का परम पद है।" वहाँ, श्रीमन्नारायण भगवान अपार आनन्द का अनुभव करते हुये विराजमान रहते हैं। लीलाविभूति में पड़े हुए संसारी चेतनों की दुःखमयी स्थिति को देखकर उनके मन में दुःख भी एक तरफ बना रहता है। वे सोचते हैं कि इन बद्धजीवों को देहेन्द्रियादि दिये गये हैं। वे भी इसलिए हैं कि ये जीव मेरे चरणारविन्दों का आश्रय लेकर उज्जीवन को प्राप्त करें। जैसा कहा गया है कि "विचित्रा देह-सम्पत्तिरीश्वराय निवेदितुम्। पूर्वमेव कृता ब्रह्मन् हस्तपादादिसंयुता' ॥ (अर्थ)—"कर-चरणादिसमेत विचित्र यह देहरूपी सम्पत्ति श्रीभगवान को समर्पित करने के लिए पहिले से ही दी गई है"। एवं महिम सम्पन्न देहेन्द्रियादि दिये जाने पर भी, हाय, ये संसारी जीव थोड़ा सा भी अवधान न करते हुए दुर्मार्गों में प्रवृत्त होकर बारंबार गहरे संसार सागर में डूबते जा रहे हैं, उत्तीर्ण होने की बात ही क्या, उत्तीर्ण होनेकी इच्छा तक भी नहीं रखते। यों विचारकर आनन्दमय होते हुए भी श्रीभगवान् इस दुःखी हो जाते हैं।

यद्यपि श्रीभगवान सर्वेश्वर हैं, वे रोक-टोक के स्वतन्त्र हैं, इसलिए सभी संसारी जीवों को स्वयं बलात्कार से ही खींचकर अपने चरणारविन्दों के तरफ लगा दे सकते हैं, तथापि वैसा नहीं करते क्योंकि वैसा करने में कोई मजा नहीं है। श्रीभगवान का संकल्प तो यही है, कि "ये जीव मेरे दिये हुए करण कलेवर स्वातन्त्र्य शक्ति वगैरह की सहायता लेकर ध्यान अर्चन प्रणाम स्तुति इत्यादि सत्कर्मों का अनुष्ठान कर मेरे चरणारविन्दों को प्राप्त करें"। इसी संकल्प को सिद्ध करने के लिए ही श्रीभगवान अनेक शास्त्रों का प्रवर्तन किये हैं। जीवों में उन शास्त्रों की विफलता को देखकर खुद नाना योनियों में अवतार लिये। उस समय भी "अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्" यह कह कर अर्थात् "मनुष्य शरीर, लिए हुये हमको मूढ़ लोग तिरस्कार ही करते हैं" यह कहकर श्रीभगवान को दुःखी ही होना पड़ा। इस तरह अनेक उपाय व्यर्थ होने पर अपने मनोरथ को सफल न होता देखकर खिन्न होते हुये श्रीभगवान अन्त में इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि "जैसे लोक में सजातीयमृगों द्वारा मृग पकड़े जाते हैं, वैसे ही सजातीयजीवों द्वारा सत्शिक्षा देकर इन संसारी जीवों को पकड़ना चाहिये"। इसी सदुपाय का निर्धारण कर सत्यकाम सत्यसंकल्प श्रीभगवान वैसा ही करने लगे। श्रीसरोयोगी श्रीभूतयोगी श्रीपराङ्कुशस्वामी प्रभृति परमभक्तों को—जो आल्वार नाम से तथा दिव्यसूरिनाम से पीछे प्रसिद्ध हुए हैं—नानास्थलों में नानावर्णों में अवतार देकर उन्हीं के श्रीमुखों से वेदाविर्भारूपी द्राविड़भाषामय दिव्यप्रबन्धों को प्रकाशित कराकर उनसे अपने मनोरथको सम्पन्न होता देख कर बहुत प्रसन्न भये॥

उन दिव्यसूरियों की शुभ नामावली यह है, (१) सरोयोगी (२) भूतयोगी (३) महदाह्वययोगी (४) भक्तिसारयोगी (५) श्रीशठकोपयोगीन्द्र (६) कुलशेखरयोगी (७) भट्टनाथ नाम वाले श्रीविष्णुचित्तयोगी (८) भक्तांघ्रिरेणुयोगी (९) मुनिवाह ननाम वाले श्रीपाणयोगी (१०) परकाल नाम वाले श्रीकलिध्वंसि-योगी॥ ऐसी भी प्रसिद्धि है कि बारह दिव्यसूरि हैं, उन में श्रीमधुरकविस्वामीजी भी शामिल हैं, जो श्रीशठकोपयोगीन्द्र के श्रीचरणों का आश्रय लेकर उन्हीं को ही पर देवता समझते थे, तथा श्रीगोदाम्बा जी भी शामिल हैं, जो श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की पुत्री थीं। इन दोनों को मिलाकर बारह दिव्यसूरियों को माननेका यह कारण है कि इन दोनों के दिव्य प्रबन्ध भी चार हजार दिव्यप्रबन्धों के अन्तर्गत हैं, जो द्राविड वेद के नाम से सुप्रसिद्ध हैं।

इन दिव्यसूरियों के अवतारदेश अवतारकाल और चरित्र इत्यादि बातोंका वर्णन करने वाला 'गुरुपरम्परा-प्रभाव' नामक द्राविड़भाषामय ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। संस्कृतभाषामें "दिव्यसूरिचरित" "प्रपन्नामृत" नामवाले दोनों काव्य प्रसिद्ध हैं जो, पद्यमय हैं। संस्कृतभाषा रसिक सज्जनों का उपकार करने के विचार से दासदास मैंने इन तीनों ग्रन्थों में "गुरुपरम्पराप्रभाव" नामक द्राविड़ ग्रन्थ के अनुसार सरल संस्कृत गद्यरूपी 'दिव्यसूरि कथामृत' नामका रमणीय ग्रन्थ बनाया है, जिसका यह हिन्दी अनुवाद है।

अवतारिका समाप्त॥

॥ वैभववर्णन का प्रारम्भ ॥

(१) सरोयोगी (२) भूतयोगी (३) महदाह्वयोगी इन तीनों सूरियों का वैभव ॥

तुलामासि शुभे श्रोणाप्रभृत्यृक्षत्रये भुवि। जातानामाद्य सूरीणां प्रभावः परिकीर्त्यते

अर्थ—"शुभ तुलामास में श्रवण इत्यादि तीन नक्षत्रों में भूलोक में अवतार लिये हुए प्रथम तीनों सूरियों का प्रभाव अब वर्णन किया जाता है"।

सरोयोगी भूतयोगी महदाह्वयोगी ये तीनों सूरि तब से एक साथ ही रहा करते थे जब से श्रीभगवान के कटाक्ष का पात्र बने। इन तीनों के विषय में प्राचीन काल से ही यह प्रसिद्धि चली आती है कि ये "मुदलाल्वार" हैं अर्थात् आद्यसूरिगण हैं। इन तीनों का वैभव भी एक साथ ही वर्णन किया जाता है। ऐसी भी प्रसिद्धि है कि ये तीनों द्वापरयुग के अन्त में अवतार लिये हैं और अयोनिज हैं।

तुण्डीरमण्डल में सत्यव्रतक्षेत्र में काञ्चीमहानगरीमें वेगवतीनदी के दक्षिण भागमें श्रीयथोक्तकारि भगवान के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध वेगासेतुक्षेत्रमें उत्तर दिशामें विराजमान दिव्य सरोवरमें खिले हुए कमलपुष्प से तुलामास मे श्रवणनक्षत्रमें प्रथमसूरि श्रीसरोयोगी अवतार लिये, इससे सरोयोगी नाम से इनको प्रसिद्धि हुई॥

उसी तुण्डीरमण्डल में ही पूर्वसमुद्र के तीरमें विराजमान श्रीमल्लापुरी में पुष्पवाटिका में मागधी-पुष्प में से तुलामास में ही श्रविष्ठानक्षत्र में द्वितीयसूरि अवतार लिये, जो भूतयोगी नाम से प्रसिद्ध हुये। 'भू सत्तायां' धातु से क्तप्रत्यय करने पर भूतशब्दनिष्पन्न होता है जिसका अर्थ है "सत्ता को प्राप्त हुए"। तैत्तिरीयोपनिषदमें कहा गया है कि "असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः"। अर्थ—"जिस पुरुष को ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ, वह पुरुष असत् है अर्थात् सत्ता को प्राप्त नहीं हुआ है, जिस पुरुष को ब्रह्मज्ञान हुआ वह सत् है अर्थात् वह सत्ता को प्राप्त हुआ है।" इस उपनिषदुक्ति के अनुसार इनका भूतयोगी नाम सार्थक है; क्योंकि ये श्री भगवानके स्वरूप गुण विभूति इत्यादि विशेषों का पूर्ण अनुभव होनेके कारण सत्ताको प्राप्त हो गये थे। उसी तुण्डीरमण्डल में ही श्रीकैरविणीक्षेत्र के दक्षिणभाग में विराजमान महिलापुरी में एक दिव्यकूप में सौगन्धिक पुष्प से उसी तुलामास में शतभिषग् नक्षत्र में तीसरे सूरि अवतार लिये। ये द्राविड़भाषा में "पेयाल्वार" नाम से प्रसिद्ध हैं। "पेयाल्वार" इस शब्द का अर्थ है "उन्मत्तसूरि"। कहते हैं कि अत्यधिक श्रीभगवद्गुणानुभव के कारण ये उन्मत्त के समान अर्थात् पागल के समान रहते थे, इसलिए इनका उन्मत्तसूरि नाम पड़ा। श्रीपराशरभट्टार्य विरचित सुप्रसिद्ध "भूतं सरश्च" इत्यादि श्लोक में महदाह्वय नाम से ये ही वर्णन किये गये हैं। श्रीभक्तिसार-सूरि को सच्छिष्य देने से इनकी महिमा बहुत बढ़ गई थी, इस लिये "महदाह्वय" कहलाये।

अत्यन्त प्राचीन होने के कारण इन तीनों का वैभव अतिसंक्षिप्त रूप से ही मिलता है, वह इस प्रकार है। श्रीराम भरत और लक्ष्मण के समान क्रमसे तीन दिनोंमें अवतार लिए हुए अयोनिज इन तीनो आचसूरियों को श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान की आज्ञा से सूत्रवतीसमेत श्रीविष्वक्सेन स्वामीजी पधार कर पञ्चसंस्कार देकर परमपावन बनाये थे। शुद्धसात्विक ये तीनों सूरिराज ज्ञान भक्ति और विरक्तियों के विहारगृह की तरह रहते थे, भगवद्गुणानुभव को ही अपना धारक पोषक और भोग्य मानते थे, अन्न-पानादिक में निःस्पृह रहते थे, सामान्य प्राकृत संसारी जनों के सहवास से बहुत दूर रहते थे, सदा तीर्थाटन करते थे, इनकी आपस में पहिचान नहीं थी; अकेले दिव्यदेश-तीर्थ यात्रा करते थे। श्रीभगवान चाहते थे कि 'इन तीनों दिव्यसूरियों को एकत्रित किया जाय, इनसे कैङ्कर्य लिया जाय, इनके द्वारा जगत का उज्जीवन कराया जाय" इत्यादि।

क्या, सत्यकाम सत्यसंकल्प श्रीभगवान का मनोरथ कभी भी विफल हो सकता है, कभी नहीं। उनका मनोरथ सफल होने के लिए मौका भी मिल गया। एक समय चौमासा में किसी एक दिन सायंकाल सूर्य अस्त होने पर श्रीसरोयोगी श्रीत्रिविक्रम भगवान के सन्निधान से अलङ्कृत देहली क्षेत्र नामक गोपालपुर को (तिरुक्कोवलूर)आकर वहाँ मृकण्डुमहर्षि के आश्रम को जाकर वहाँ देहलीमें शयन करने लगे। अनन्तर श्रीभूतयोगी भी वहाँ आकर उनसे मिले। शास्त्रों में कहा गया है कि "वैष्णवो वैष्णवं दृष्टा दण्डवत् प्रणमेद्भुवि" अर्थात् "एक वैष्णव दूसरे वैष्णव को देखकर भूमि में दण्डवत् प्रणाम करे।" इस विधि से अनुसार परस्पर प्रणाम इत्यादि उपचार होने पर श्रीसरोयोगी विनती किये कि 'यहाँ पर स्थान इतना संकुचित है कि एक पुरुष शयन कर सकता है, दो पुरुष बैठ सकते हैं।' अनन्तर दोनों बैठ गये। अनन्तर क्षण में महदाह्वयोगी भी वहाँ आगये। परस्पर उपचार सम्पन्न होने के बाद श्रीसरोयोगी और भूतयोगी बोले कि "यहाँ पर एक मनुष्य शयन कर सकता है, दो बैठ सकते हैं, तीन खड़े रह सकते हैं"। अनन्तर ये तीनो सोना बैठना छोड़कर सानन्द भगवद्गुणानुवाद करते हुए खड़े-खड़े ही रहे आये।

इसी मौका को देखकर श्रीत्रिविक्रम भगवान् इन तीनों में अत्यद्भुत अनुग्रह को प्रकाशित करने के लिए गाढान्धकार और घन-घोर वृष्टि को उत्पन्न किये। तथा खुद बड़ा भारी श्रीविग्रह लेकर इन तीनों के बीच में घुसकर ऐसे सम्मर्द को अर्थात् गर्दी को उत्पन्न किये, जो सहन करने तथा वर्णन करने में अशक्य था। तब ये तीनों सूरि विह्वल होकर बोले कि "अजी बिना सोचे ही आये हुए इस तरह के असह्य सम्मर्द का कारण क्या है, क्या दूसरे कोई यहाँ घुस आये हैं, कैसे घुस आये, यह भी तो मालूम नहीं होता, प्रकाश नहीं होने से देखना भी तो कठिन हो गया है, यह क्या है? कैसा हो गया?" इत्यादि। उसी परिस्थिति में श्रीभगवान ने खुद अपनी निर्हेतुक परमकृपा से स्व-स्वरूप को प्रकाशित कराकर दिव्यमङ्गलविग्रह श्रीमहालक्ष्मी दिव्यभूषण और दिव्यायुध इन सबका दर्शन करा कर इन तीनों को मानो परमानन्द समुद्र में डुबा दिया।

अनन्तर ये तीनों भी अपने-अपने अनुभव के परीवाहरूप से अलग-अलग सौ-सौ गाथाओं से

समेत तीन दिव्य प्रबन्धों को प्रकट कराकर हमारे सरीखे संसारियों को उज्जीवित किये। तब से लेकर ये तीनों सूरिराज क्षणमात्र भी अलग न होते हुए परस्पर मिलकर दिव्य देशों के अनुभव लेते हुए योगबल से बहुत काल तक इस लीलाविभूति को अलङ्कृत किये रहे।

इत्थं कासारादिम-मुनिवर-वैभवमतीव हृद्यमिह।
अनुसन्दधतां हि सतां श्रेयांसि भवन्ति सपदि भूयांसि॥

अर्थ—"इस तरह मनोहर सरोयोगो इत्यादि तीनों सूरियोंके वैभव को अनुसन्धान करने वाले सत्पुरुषों को इस लोक और पर लोक में अनेक श्रेय शीघ्र सम्पन्न होते हैं"।

॥ इस तरह प्रथम मुनित्रय-वैभव समाप्त हुआ॥

॥ श्रीभक्तिसारमुनीन्द्र (तिरुमलिशैयाल्वार) का वैभव॥

मकरे मासि मघर्क्षे भूसार-क्षेत्र-कलित-जननस्य।
श्रीभक्तिसार-नाम्नो योगीन्द्रस्य प्रभावमभिदध्मः॥

अर्थ—मकरमास में मघा नक्षत्र में महीसारक्षेत्र में अवतार लिये हुए श्रीभक्तिसार नामक योगीन्द्र के प्रभाव का वर्णन करते हैं।

पूर्वकाल में किसी एक समय अत्रि भृगु वसिष्ठ भार्गव पुलस्त्य अङ्गिरा इत्यादि बहुत से ब्रह्मर्षि-गण सत्यलोक पहुँचकर वहाँ बहुत वैभव के साथ विराजमान श्रीब्रह्माजी के दरबार में पहुँचे। वहां ब्रह्माजी को प्रणाम कर हाथ जोड़कर विनती किये कि हे भगवान्! हम लोग भूलोक में किसी एक श्रेष्ठ क्षेत्र में तपस्या करना चाहते हैं, तदर्थ आप से श्रेष्ट क्षेत्र को जानने के लिये यहां उपस्थित हुए हैं। आप कृपा करके उत्तम क्षेत्र को निर्धारण कर बतलाइये"। इस तरह बिनती किए जाने पर दयालु श्रीब्रह्माजी देवशिल्पी विश्वकर्मा को बुलाकर उनको आज्ञा दिए कि "इन सब महर्षियों के देखते रहते ही आप एक दिव्य तराजू को तैयार कर उसके एक पलडे में पचास करोड़ योजन-विस्तीर्ण इस सारे भूमंडल को रखकर दूसरे पलड़े में "तिरुमलिशै" नामक पुण्यक्षेत्र को रखकर तोलिये।" विश्वकर्मा इस तरह की श्रीब्रह्मा जी को आज्ञा को शिरसा धारण कर वैसे ही करने लगे। उस समय सम्पूर्ण भूमंडल को धारण करने वाला पलड़ा हलका होने के कारण ऊपर उठ गया, "तिरुमलिशै" नामक क्षेत्रमात्र को धारण करने वाला पलड़ा भारी होने के कारण नीचे चला गया।

अनन्तर ब्रह्माजी उन महर्षियों को प्रस्थापन करते हुये आज्ञा किये कि "यह तिरुमलिशै क्षेत्र अत्युत्तम है, इसका आज से भूमि में सार होने के कारण 'महीसार' नाम होगा, आप सब वहां जाकर तपस्या करें"। अनन्तर सत्यलोक से निकले हुये वे महर्षिगण भूलोकमें आकर दक्षिण दिशा में तुंडी-रमंडलमें श्रीभूतपुरी और कैरविणी क्षेत्रोंके मध्यमें विराजमान उसी महीसार क्षेत्रमें पहुँचकर जितेन्द्रियता इत्यादि नियमों के साथ अद्भुत तपस्या करने लगे उनमें भार्गव नामक महर्षि दीर्घसत्र नामक महायज्ञ

सर्वाङ्ग सुन्दर था, अयाकृत के समान चमकता था, भूमिपर पधारे हुए सूर्य देव के समान शोभायमान था। उस शिशु को देखते हुये उसका मन सन्तोष और आश्चर्य से भर आया और सोचकर निश्चय किया कि परमकारुणिक श्रीभगवानने ही मुझे यह पुत्र प्रदान किया है। हर्षाधिक्य से प्रफुल्ल अपने दोनों करकमलों से उस शिशु को उठा लिया और लेजाकर अपनी पत्नी को दिया। पत्नी का नाम पङ्कज-वल्ली था। कहने लगे कि पुत्ररहित हम दोनों को निर्हेतुक-भगवत्-प्रसाद के फलस्वरूप यह शिशु प्राप्त हुआ है,इत्यादि। उनकी स्त्रीने भी उस शिशुको सादर ले लिया, प्रेमके साथ लालन करने लगी,उस समय उसीके स्तन से दूध स्रवित होने लगा, जैसे शिशुरूप श्रीकृष्ण भगवान के विषय में प्रेमसे श्री यशोदा देवी स्तन से दूध स्रवित हुआ था। उसने वह दूध उस शिशु को पिलाना चाहा, किन्तु वह दिव्य शिशु उस स्तन्यको और अन्नपानादि को भी नहीं लिया। क्योंकि वह दिव्यशिशु "वासुदेवः सर्वम्" अर्थात् "श्रीवासुदेव भगवान ही सर्वस्व हैं, परम भोग्य हैं" ऐसे सुदृढ अध्यवसाय को प्राप्त कर लिया था, उससे उनका मन परिशुद्ध हो गया था, और भगवद्गुणोंका अनुभव ही उनके लिए धारक पोषक और भोग्य था,इससे संसारी जनों के स्वभावमें तथा उनके स्वभावमें बहुत अन्तर हो गया था, वे रोदन-भाषण दि लोकव्यवहारको भी छोड़ दिये थे,मल-मूत्रादि विसर्जन भी उनको नहीं होता था और अपने लोकोत्तर श्रीविग्रह के तेजःपुञ्जसे अन्धकारच्छटा को हटा दिया करते थे, इस प्रकार आप शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगे ॥

इस तरह बढ़ते हुए भगवदनुभवरूपी अमृतास्वादन से ही प्राणधारण करने वाले इस दिव्यमहा-पुरुष की विलक्षण कीर्ति जगतमें चारों तरफ फैलने लगी। सभी जनता इस बात को सुनकर और देख कर आश्चर्यसागर में डुबकी लगाने लगी। उसी देशमें रहने वाला कोई चतुर्थ वर्ण में उत्पन्न वृद्ध इस तरह की इनकी लोकोत्तर महिमा को सुना, सुनकर उसके मन में इच्छा हुई कि इन मुनिराज की सेवाकर धन्य बन जायें. इसलिये वह वृद्ध अपनी धर्मपत्नी के साथ परमपवित्र गोक्षीरको भेंटमें चढ़ाने के लिये हाथ में लेकर बड़े सवेरे श्रीस्वामीजी के गृह द्वार पर उपस्थित हुआ और भूमिमें प्रकट हुये दूसरे सूर्य के समान श्रीस्वामीके अपार तेजःपुञ्ज को देखकर आश्चर्यचकित हो गया और लाये गये दुग्धपात्र को सामने रखकर प्रेम और विनय के साथ प्रार्थना करने लगा कि परमकृपया आप इस दूध को ग्रहण कर हम लोगों को अनुगृहीत करें इत्यादि। इस तरह प्रार्थना किये जाने पर ये स्वामीजी महाराज उनकी भक्तिसे मानो खरीदे गये अर्थात् प्रसन्न हृदयहो गये और उस दूध को पान करने लगे। वे दोनों दम्पती रोज इस तरह सेवा करने लगे और उनके मन में यह कामना रहती थी कि "हम दोनों को पुत्र नहीं होने से जो दुःख हो रहा है वह किसी तरह दूर हो जाय"। स्वामी जी भी उनके अपार प्रेम भाव से प्रसन्न होकर, हर रोज उस दूध को पीते रहे। एक दिन दूध को पीकर बचा हुआ कुछ अंश उन दम्पतियोंको प्रदान किये। वे दम्पति जब उस दूधको पिये तब तुरन्त ही उनकी जरा दूर हो गई, शरीरमें यौवन आ गया, शरीरमें शोभा भी बढ़ गई, इस तरह उनमें परिवर्तन हो गया।

से श्रीवासुदेव भगवान का आराधनकरने के अनन्तर उन भगवान को प्रसन्न करने केलिये घोर तपस्या करने लगे। उसी तपस्या में विघ्न डालने के लिये देवता लोग ऊर्वशी तिलोत्तमा रम्भा और मेनका इत्यादि अप्सराओं को भेजे। वे सुरसुन्दरियां यहां आकर इस महर्षि की तपोनिष्ठा को शिथिल करने के लिये तरह-तरह के प्रयत्न करने पर भी आखिर में विफल मनोरथ होकर लौटने लगीं, क्योंकि इस महर्षि का मनोभृङ्ग श्रीभगवच्चरणाविन्दों के अनुभव में तल्लीन था। लज्जा और भय से अभिभूत होकर वे अप्सरायें जब लौटकर चली गईं, तब अपार चातुर्य और विलासिता का खजाना भगवन्माया की तरह विश्वव्यामोहन करने वाली अनन्त-शक्तियों से सम्पन्न और मन्मथ बसन्त चन्द्रमा मलयमारुत इत्यादि सहायकों को साथ लेती हुई कनकाङ्गी नामक एक दिव्य अप्सरा दृढ प्रतिज्ञापूर्वक उस महर्षि के समीप आकर विविध हाव-भावों को दिखाती हुई सरल सरस सङ्गीत के साथ नर्तन करने लगी।

दैव का विधान बड़ा बलवान होता है। इसलिये ही वे महर्षि भी अपने मनको भवगद्ध्यान से हटाकर कनकाङ्गी के सङ्गीत माधुर्य के अनुभव में लगने लगे, आंख खोलकर उसी के अपार सौन्दर्य को देखकर मन्मथपरवश होकर योग को छोड़कर भोगप्रसङ्ग में लग गये, और स्वस्वरूप को भूलकर मोह जाल के वशमें होकर भोगानुभव में तल्लीन होते हुये बहुत से समय को व्यतीत कर दिये।

कुछ समय के बाद वह कनकाङ्गी गर्भवती हुई। अनन्तर मकरमास में मघा नक्षत्र में गर्भपिण्ड प्रकट हो गया। उसमें श्रीभगवान के चक्रराज का आवेश हो गया। उस गर्भपिण्ड में कर चरण इत्यादि अवयव सन्निवेश दिखाई नहीं देता था, इसलिए उस पर उपेक्षा भाव रखती हुई वह अप्सरा उस गर्भपिण्ड को सन्निहित किसी एक बेतों के गुल्ममें फेंककर महर्षि की तपस्या को बिगाड़ देने से अपने मनोरथ को फलित मानती हुई स्वर्गलोक चली गई। क्रम से स्व-स्वरूप को पहचान कर वे भार्गवमुनि मन में बहुत पश्चात्ताप करने लगे। अनन्तर उस जगहको छोड़कर दूसरे स्थान में जाकर तपस्या करने लगे। अस्तु।

बेतों के गुल्म में फेंका गया वह पिण्ड कालक्रम से परमसुन्दर शिशु के रूप में परिणत हो गया। वह दिव्यशिशु क्षुधा प्यास से व्याकुल होकर उस विजन वनमें रोता रहा। तब उसी दिव्यक्षेत्र में विराजमान श्रीजगन्नाथ भगवान श्रीजी के साथ वहां पधारकर कारुण्यरूपी वायु से लाये गये अपने कटाक्षरूपी अमृत-समुद्र-तरङ्गों के कणों से उस शिशु को सींचकर अपने दिव्यमङ्गलविग्रह का दर्शन देकर उस शिशु की भूख प्यासको मिटाकर अन्तर्धान को प्राप्त हो गये।

अनन्तर श्रीभगवान के वियोग से उत्पन्न सहन करने में अशक्य दुःख से पीड़ित वह दिव्यशिशु फिर भी रोदन करने लगा।

उसी समय वहां एक वेत्रजीवी अर्थात् बेतों की टोकरी बनाकर बेंचकर जीनेवाला आया। उसका नाम श्रोनिधि था। वह उस शिशु की रोदन ध्वनि को सुना। समीप जाकर उस शिशुको देखा। वह शिशु

नन्तर पश्चात्ताप करने लगे कि मेरा बहुत सा समय व्यर्थ ही व्यतीत हो गया, अनन्तर आप शैव क्षणों को छोड़ कर तत्त्वोपदेशक श्रीमद्दाढ्ययोगी के चरणारविन्दों में प्रणामकर आपसे श्रीवैष्णव ीक्षा को प्राप्तकर विशुद्धान्तःकरण बने, तथा विपुल श्रीविष्णुभक्तिरूपी सम्पत्तिसे सम्पन्न होकर शोभा-मान दीखने लगे। इस तरह श्रीभक्तिसारयोगी को उज्जीवित कराकर श्री महद्दाढ्ययोगी दिव्यदेशों ी सेवा करने के लिए चले गये। श्रीभक्तिसारयोगी भी महीसारक्षेत्र को आकर योगाभ्यास में निपुण ोने से जगत के एक कन्द श्रीमुकुन्द भगवान का ध्यान करते हुए विराजमान रहते थे।

उस समय किसी एक दिन शंकरजी वृषभारूढ होकर आकाशमार्ग से जाते थे। पार्वती नीचे मुख करके भूमिमें इधर उधर देखती हुई अचानक श्रीभक्तिसारयोगीन्द्र के अपार तेजको देख आश्चर्य चकित होकर श्रीशंकरजी से पूछने लगी कि हे प्राणनाथ! अपार तेजवाले ये महापुरुष कौन हैं। शिव जी बोले कि मेरा भजन को छोड़कर श्रीमन्नारायण भगवान का भक्त बने हुए थे, कोई महात्मा हैं, तब पार्वती बोली कि इस महापुरुष को हम दोनों दर्शन देकर तथा अभिमत वर देकर आवें तो अच्छा होय, पार्वती की बातको मानकरशंकरजी पार्वतीके साथ श्रीभक्तिसारस्वामीको दर्शन देने लगे, श्रीभक्तिसारस्वामीजी उनको देखकर भी न देखते सरीखा रहते थे, एक कन्थाको डोरासे सीते हुए शंकरजी को यह जानते थे कि दूसरे कार्यमें लगे हुए हैं। इस उपेक्षाको जानकर श्रीशंकरजी श्रीभक्तिसारस्वामी से कहने लगे कि हे महात्माजी आप पर अनुग्रह करने केलिये आये हुए मेरे विषयमें इस तरह अनादर करना क्या आपको ुचित है। योगिराज बोले कि आप से किसी अभिमत को प्राप्त करने के लिए मुझे इच्छा नहीं है। इसलिए ही मैं उदासीन रहता हूं। फिर भी श्रीशंकरजी निर्बन्ध करते हुए कहने लगे कि हे योगिराज! मेरा दर्शन कभी भी व्यर्थ होता नहीं, इसलिये किसी एक वरको मांगकर प्राप्त कर लो, श्रीस्वामी जी बोले कि यदि आप अभिमत वर देने में समर्थ हैं तो मुझे श्रीवैकुन्ठ दे दीजिये, श्री शङ्करजी प्रत्युत्तर में कहे कि श्रीवैकुन्ठ देने में मैं असमर्थ हूँ, श्रीनारायण भगवान ही उसे दे सकते हैं, इसलिए दूसरा वर मांगो। तब हंसते हुए श्री स्वामीजी बोले कि उस मुक्ति को प्राप्त करने के लिए इस भूलोक में बहुत काल तकरहकर योगानुष्ठान करने के लिए आप मेरे आयु को अधिक बढ़ाने की कृपा करें। कैलासपति ीशङ्करजी प्रत्युत्तर दिये कि कर्मानुसार आयु की नियत होती है, मैं आयु को बढ़ा नहीं सकता तथा ाटा नहीं सकता हूँ, इसलिए दूसरा वर मांगो। तब योगीन्द्र मन्दहास करते हुए शिर नवाकर मानों रिहास करते हुए बोले कि यह वर आप दे देवें जिससे यह डोरा इस सुई में बराबर घुसे और ुई के अनुसार चले। इस परिहास वाणी से अत्यन्त कुपित होकर शङ्करजी "अतिगर्वयुक्त तुमको भी ही मन्मथ की तरह शरीर हीन बना देता हूं" यों कहते हुये अग्निमय अपने ललाटनेत्र को खोल ये। उस नेत्र से निकल कर आते हुये धूमसमेत चिनगारी समूह को देखकर श्रीभक्तिसार स्वामी णुमात्र भी विह्वल न होते हुये धैर्य की सीमा में रहते हुये अपने दक्षिण चरणाङ्गुष्ठ में रहने वाले त्र को खोल दिए। वहां से निकली हुई महाग्नि कालाग्नि को भी तिरस्कृत करती हुए बहुत वेग से ारों तरफ बढ़ने लगी और शांकर अग्निको दबाकर प्रज्वलित होने लगी। तब शङ्करजी इस अग्नि को

कुछ समय बीत जानेपर परमभक्ति की निधि वह स्त्री गर्भवती हुई, और एक पुत्ररत्न को प्रकट किया। कणिकरण नाम से वह पुत्र प्रसिद्ध हुआ। कालक्रम से अभिवृद्धि को प्राप्त हुए इस कुमार को इसके पिता ने श्रीस्वामीजी की सन्निधि में पहुँचाया। वह कुमार भी श्रीस्वामीजी के शुभकटाक्ष वीक्षण से दिव्य विमल ज्ञान से सम्पन्न हुआ, अनेक सद्ग्रन्थों का अध्ययन किया, भगवद्भागवतभक्ति सम्पत्ति से शोभायमान हुआ, इस तरह बढ़ने लगा।

भार्गवमहर्षि के पुत्र श्रीभक्तिसार स्वामीजी महाराज इस तरह सात साल तक उस वेत्रजीची कुटुम्ब में निवास किये थे, अनन्तर अष्टाङ्गयोग से आराधनकर श्रीभगवान को प्राप्त करने के लिए वहां से निकलकर नानादेशों में पर्यटन करने लगे, सर्वोत्तम परतत्त्व को विचारकर निर्धारण करना चाहते थे। इसलिए आप चार्वाक बौद्ध इत्यादि अवैदिक-वादसिद्धान्तों में तथा वैदिक कुदृष्टिमतों में भी प्रविष्ट हुए, उन उन मतों के सर्वस्वभूत नानाग्रन्थों का अध्ययन किया, तत्तत्समयों में उन उन मतों के अनुकूल नाम रख लिये, आचरणादिक भी करने लगे, अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया, इस तरह अनेक मतों को लेते छोड़ते हुए अन्त में शैवमतमें प्रविष्ट हुए, शिवपरक अनेक ग्रन्थों का निर्माण किये, परमशिव के ध्यान में तत्पर होकर रहते थे।

इस तरह कुछ समय बीत जाने पर सरोयोगी भूतयोगी महदाह्वयोगी इन तीन प्राथमिक मुनियों में तीसरे मुनि श्रीमहदाह्वयोगी वहां जाकर जहाँ श्रीभक्तिसारयोगी रहते थे,श्रीभक्तिसारयोगीके वृत्तान्त को जानकर श्री भक्तिसारयोगी को सुशिक्षित कराकर श्री वैष्णवसंप्रदायप्रवर्तन में धुरन्धर बनाने को चाहते हुए वहां पर एक आश्रम का निर्माण किये, जहां पर भार्गव पुत्र श्रीभक्तिसारयोगी रहा करते थे, उस आश्रम में मानों फलपुष्प वृक्षों से समृद्ध एक बगीचा बनाने को चाहते हुए कई छोटी-छोटी लताओं को अधोमुख रोप छिद्रयुक्त घटों को तथा शिथिल रस्सी को लेकर उनसे पानी खींच कर उन लताओं को जल से सींचने को प्रारम्भ किये। हाय, यह क्या वृथा परिश्रम नहीं है। पामर लोग भी तो इस तरह की प्रवृत्ति को देख कर परिहास करेंगे, छोटी-छोटी लताओं को नीचे मुख करा कर रोपना छिद्रयुक्त घड़ेसे पानी लाना और शिथिल रस्सी से पानी खींचना इत्यादि सब कुछ परिहसनीय ही तो है। श्री महदाह्वयोगी की इस कृति को देखकर भार्गवपुत्र श्री भक्तिसारयोगी हंसते हुये आपके समक्ष आकर कहने लगे कि "क्या आप मत्त हैं, क्या आप उन्मत्त हैं" इत्यादि। श्री महदाह्वयोगी प्रतिवचन दिये कि मैं मत्त नहीं हूं, उन्मत्त भी नहीं हूं, सचमुच वैसे तो आप ही हो। आपस में थोड़ा बहुत वाद विवाद हो जानेपर श्रीमहदाह्वयोगी प्रतिपादन किये कि बहुत समय से अनेक मतों में प्रवेश करके भी परतत्त्व कौन है? इस बातको यथार्थ रीति से निर्णय करने में अशक्त होते हुए और क्लेश पाते हुए आप ही तो मत्त और उन्मत्त हैं। नित्य निर्दोष समस्त कल्याण गुणनिधि श्रीमन्नारायण भगवान के रहते उन्हीं का आश्रय न लेकर किसी एक भिक्षुक को परतत्त्व मानने वाले आपको छोड़कर दूसरा कोई भी मत्त अथवा उन्मत्त मेरे दृष्टिपथ में नहीं आता है। इस प्रसङ्ग से उन दोनों में शैववैष्णव वाद युद्ध बढ़ने लगा। उस वाद संग्राम में भार्गवपुत्र श्री भक्तिसारयोगी परास्त

भूतयोगी श्रीमद्दाढ्ययोगी गुफा में आसन लगाकर विराजनेपर भी बाहर निकलने वाली श्रीभक्ति..र स्वामीजी की दिव्यतेजश्छटा से आकृष्ट होकर भीतर प्रवेशकर श्रीभक्तिसारस्वामीजी को पहचान .र उनसे कुशल प्रश्न इत्यादि करके बड़े प्रेम के साथ श्रीभगवद्गुणानुभव करते हुए कुछ काल तक ..हां विराजते थे। ज्ञान भक्ति विरक्ति शान्ति इन चारों के मेल की तरह इन चारों महात्माओं का मेल ..हाँ शोभा दे रहा था। इस तरह कुछ काल बीतने पर ये चारों योगिराज श्रीमद्दाढ्ययोगी की जन्म भूमि महिलापुर में पहुँचकर वहाँ कैरवतीर्थ के तीर में बहुत काल तक योगाभ्यास करके समाधि में मग्न रहते थे। अनन्तर प्रथम तीनों योगिराज दिव्यदेशपर्यटन के लिए चले गये॥

अनन्तर श्रीभक्तिसार स्वामीजी अपनी जन्मभूमि महीसारक्षेत्र में आकर निवास करते रहे। वहां एक समय ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण के लिये श्वेतमृत्तिका इनको न मिली, इससे चिन्तित हो गये, उस समय श्रियःपति श्रीवेंकटेश भगवान इनको स्वप्न में दर्शन देकर परमकृपा से आज्ञा दिये कि श्रीकाञ्ची में श्रीवेगासेतुभगवन मन्दिरके समीप में रहने वाले सरोवर में आपको श्वेतमृत्तिका मिल जायगी, वहां आप पधारो। इस तरह श्रीवेङ्कटेश भगवानकी अनुग्रहमयी वाणी को सुनकर श्रीभक्तिसार स्वामीजी का मन हर्षसे प्रफुल्लित हो गया, आप वहां से निकलकर काञ्चीक्षेत्र आकर उसी सरोवर में श्वेतमृत्तिका को पाकर बहुत सन्तुष्ट हुए और वहां श्रीवेगासेतु भगवान के मन्दिर में निवास करते हुये उसी भगवान की नित्य सेवा करते हुए बहुत काल तक वहीं रहते थे॥

पहिले श्रीभक्तिसार स्वामीजी की कृपा से उत्पन्न कणिकृष्णजी उस समय वहां पर आये, अपने ..र्व श्रीभक्तिसार स्वामीजी की तरह-तरह की सेवायें करते थे। भिक्षावृत्ति से अपना देहयात्रा ..न्न करते थे। उस समय वहां एक वृद्धा स्त्री आ पहुँची जिसके सभी केश पक गये थे और सभी दांत गिर गये थे, वह वृद्धा श्रीभक्तिसारस्वामीजी के श्रीचरणों में अपार निष्ठा रखती हुई परमभक्ति से श्रीभक्तिसार स्वामीजी के निवास स्थान को झाड़ना गोमय से लीपना रङ्गवल्ली लगाना इत्यादि कैङ्कर्य करती थी। वह वृद्धा एक दिन प्रातःकाल श्रीभक्तिसार स्वामीजी के चरणों में प्रणामकर श्री ..मीजी की कृपा से सम्पूर्ण यौवन वरको पाकर अप्सरा की तरह लोभनीय सौन्दर्य सार के निधि बनकर चमकने लगी। उस नगरका अधिपति पल्लवराजा एक समय इस स्त्री को देखकर कामाक्रान्त होकर अनेक अमूल्य वस्त्र भूषण इत्यादि देकर विवाह कर इस स्त्री को प्रधान महिषीपद में रख कर अपार आनन्दानुभव लेता था॥

इस तरह कुछ काल बीतनेपर वह राजा देखा कि इस स्त्री का यौवन घटता ही नहीं, क्रम से ..शरीर में जस आ गई है, अनन्तर बहुत दुःखित होता हुआ वह राजा कारण को जानने की इच्छा से उस स्त्री से पूछा कि इतने दिन होने पर भी तुम्हारा यौवन क्योंकर नहीं घटना। वह बोली ..कणिमार स्वामीजी के वरप्रसाद से नहीं घटना है। राजा भी अपने लिए भी वैसे वरप्रसाद ..की इच्छा से उस स्त्री की खुशामद करने लगा। वह स्त्री बोली कि प्रतिदिन जो कणिकृष्ण महा-

शान्त करने के लिए अपने जटामें रहने वाले सैकड़ों मेघों को प्रेरित किये। ये मेघ भी प्रलयकाल के मेघ की तरह घनघोर वृष्टि को छोड़ने लगे, इनसे भी चकित तथा चलित न होते हुये श्री भक्तिसार स्वामीजी श्रीभगवद्भक्ति रूपी समुद्र में ही अत्यन्त डूबे रहे। इनकी इस तरह की स्थिति को देख कर राक्षसजी आश्चर्यचकित हुए और आपका भक्तिसार नाम रख कर आपकी कीर्तिको जगत में प्रख्यापित करते हुए आपके वैभवको सराहते हुए अपने वासस्थान कैलास को चले गये हैं॥

अनन्तर योगीन्द्र श्रीभक्तिसार स्वामीजी महाराज पहिले की तरह योगाभ्यास करने लगे। उस समय शुक्तिहार नामक कोई एक सिद्ध अपने सामर्थ्य से एक व्याघ्र को गर्दनहीन बनाकर उसमें चढ़ कर आकाश मार्ग में पर्यटन करता रहता था। वह व्याघ्र श्रीभक्तिसार योगीन्द्र के योगप्रभाव से कुण्ठितगति होकर आकाश में आगे न चल सका था, इसका क्या कारण है। ऐसा सोचता हुआ वह सिद्ध पृथिवीतल में चारों तरफ देखकर अन्त में योगिराज श्रीभक्तिसार स्वामीजी को देखकर वाहन से उतर कर श्रीस्वामीजी समीप में आकर इनकी शक्ति की परीक्षा करने की इच्छा से "हे भगवन् योगिराज! आप अपनी इस पुरानी कन्था को फेंक कर मेरा दिया हुआ इस पीताम्बर को धारण करें" यों कहता हुआ अतिसुन्दर एक पट्टवस्त्र को निर्माण कर प्रदान किया। श्रीभक्तिसारस्वामीजी उसे न लेते हुए अपने संकल्पमात्र से रत्नमय एक दिव्य वस्त्रको निर्माण कर उनको दिखाये। हजारों सूर्य के समान चमकने वाले उस वस्त्रको देखकर वह सिद्ध लज्जित होता हुआ अपने कण्ठ में पड़ी हुई एक रत्न-माला को निकाल कर "इसे आप जपमाला के रूप में रखा करें" यों कहकर प्रदान करने लगा। उस समय श्रीभक्तिसार स्वामीजी अपने कण्ठ में पड़ी हुई तुलसीपद्ममालामाला को निकाल कर उस सिद्धको दिखाये, वह माला उस सिद्ध को लोकोत्तर नवरत्नमाला के रूप में दिखाई दी। अनन्तर अत्यन्त लज्जित हुआ वह सिद्ध श्रीस्वामीजी को प्रदक्षिण प्रणाम कर तरह तरह की स्तुति करके "सिद्धों में सार्वभौम आप ही हैं" ऐसी प्रशंसा करता हुआ दूसरे मार्ग से चला गया॥

श्रीभक्तिसार स्वामीजी की प्रभावमहिमा चारों तरफ विशेष रूपसे फैलने लगी। कोकणसिद्ध नामक एक रसवादी संभ्रम के साथ श्रीस्वामीजी के समीप आकर एक रस गोली को दिखाकर उसकी अपार महिमा को वर्णन कर कहा कि "आप इसे ले लेवें"। श्रीभक्तिसार स्वामीजी महाराज उस रस गोली को इनकार करते हुये अपने दिव्यमङ्गल विग्रह की धूलों से एक गोली बनाकर उसे दिखाते हुये कहे हैं कि अपरिमित सोने को पैदा करने वाली इस गोली को लेकर आप आनन्द से जीवन व्यतीत करें "यों कहकर उनको उस गोली को दे दिये। वह रसवादी उस गोली की अच्छी तरह परीक्षा करके श्रीस्वामीजी की सत्यवादिता को जानकार बहुत आश्चर्य चकित होता हुआ श्रीस्वामीजी को प्रणाम कर आशीर्वाद लेकर चला गया।

अनन्तर श्रीभक्तिसारस्वामीजी महाराज दूसरे स्थल में जाकर पर्वतकी गुफामें बैठकर योगाभ्यास करते रहते थे। दिव्यदेशयात्रा प्रसङ्ग से वहां आते हुए आप तीनों योगिवर अर्थात् श्रीमन्नाथ

अर्थ—हे भगवन् ये कणिकृष्णजी इस नगरी को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना चाहते हैं, उनके साथ मुझे जाना होगा, इसलिये आप भी आदिशेष रूपी शय्या को समेट कर मेरे साथ चलनेकी कृपा करें। वे भगवान् यथोक्तकारी अर्थात् "कहे मुताबिक करनेवाले हैं" इस शुभ नाम को प्राप्त करना चाहते थे, इसलिये भक्तपराधीन वे भगवान उसी समय में अर्चावतार शैलीको भी छोड़कर योगनिद्रा को परित्यागकर आदि शेषरूपी बिछौने को समेट कर श्रीभक्तिसार स्वामीजी के साथ चलने लगे। ये तीनों भी जब उस नगरी से निकल चुके, तब वहां अन्यान्य मन्दिरों में विराजने वाले अन्यान्य श्रीभगवान भी अपने अपने तेज को छिपा लिये। इसलिये वह सारी काञ्ची-पुरी नष्टप्रभा होगई, कालरात्रि के समान दिखाई देने लगी, चारों तरफ अन्धकार छटा व्याप्त होने लगी, सूर्यके किरण भी वहां कुछ न कर सके। इस दुरवस्था को देखकर उसके मूलकारण को समझकर राजा अत्यन्त दुःखित होता हुआ मन्त्रियोंके साथ तुरन्त निकलकर किसी न किसी तरह से उस स्थल पर पहुँचा जहां श्रीकणिकृष्णजी इत्यादि रहते थे। श्रीकणिकृष्णजी को प्रणामकर वह राजा अपने अपराध के लिये माफी मांगा। इतने ही से प्रसन्नचित साधुप्रवर श्रीकणिकृष्णजी श्रीभक्तिसार स्वामी जी की सन्निधिमें इस बात को सुनाकर प्रार्थना किये कि अब तो लौटना उचित है। श्रीभक्तिसार स्वामीजी भी उस प्रार्थना को स्वीकार कर अपने अनुचर श्रीभगवान को प्रणामकर एक द्राविड गाथासे प्रार्थना करने लगे जिसका यह संस्कृत अनुवाद है—

"कणिकृष्ण इतो विरतो गमनात् पुनरेव पुरीं प्रतियाति हरे।
तमनुव्रजतैव मया सहितः पुनरेत्य पुरोमधिशेष्व सुखम्॥"

अर्थ—हे हरे! श्रीकणिकृष्ण आगे बढ़ना नहीं चाहते हैं, यहां से लौट कर काञ्चीपुरी ही आने वाले हैं, मैं भी उनके साथ चलूंगा, मेरे साथ आप भी चलकर उस पुरी में पहले की तरह आराम से शयन कर लें॥ सर्वदा सर्वथा भक्तपराधीन भगवान अपने स्थान में आकर आदिशेषजी में शयन किये हैं। श्रीकणिकृष्णजी और भक्तिसार स्वामीजी अपने स्थान पर चले गये। राजा मन्त्रिगण इत्यादि आनन्दित हो गये। तब से लेकर वे वेगासेतु भगवान यथोक्तकारी कहलाये क्योंकि भक्तपराधीन हो कर कहे मुताबिक कर डाले हैं। श्रीकाञ्चीपुरी अन्धकारहीन होकर चमकने लगी। भक्तोंके प्रभाव को देखकर राजा भी मदान्धता को छोड़कर श्रीभक्तिसार स्वामीजीका शिष्य बन गया था।

अनन्तर योगिराज श्रीभक्तिसार स्वामीजी की इच्छा हुई कि श्रीकुम्भघोणक्षेत्र जाकर वहां के भगवान का दर्शन किया जाय। इसलिए कांची से निकलकर जाते हुए स्वामीजी मार्गमें महाव्याघ्रपुरी नाम से प्रसिद्ध एक अग्रहार में किसी एक ब्राह्मण के गृहद्वार की आसनपीठिका में मानों विश्रान्ति लेने के लिए थोड़ी देर के लिये बैठ गये। राखसे छिपी हुई अग्नि के समान आपके प्रभाव को न जानते हुये वहां के वेदपाठी ब्राह्मणगण "यह नीच जातीय है; वेदवाक्यश्रवण का अधिकारी नहीं है" यों समझते हुये वेदपाठ को बन्दकर दिये। उनके अभिप्राय को ताड़कर श्रीभक्तिसार स्वामी वहां

राज भिक्षा लेने के लिए यहां आते हैं वे श्रीभक्तिसारस्वामीजी के परमप्रिय सेवक हैं, यदि आप उन पटक अर्थात् सिफारिश करने वाले बनाकर श्रीभक्तिसार स्वामीजी की सेवा करेंगे तब आपका मनो पूर्ण होगा। राजा ने इसको श्रेष्ठ उपाय मानकर अगले दिन अपने स्थान पर आये हुये श्रीकणिकृष्ण को प्रणामकर विनय के साथ प्रार्थना किया कि मैं आपके आचार्यजी की सेवा करना चाहता हूं, उ उनको यहां लाने के लिये कृपा करें। श्रीकणिकृष्णजी प्रत्युत्तर में कहे कि ब्रह्मरुद्रादि देवों की निरङ्कु विभूतिको भी तृण के समान समझने वाले मेरे आचार्य अपने आश्रम को छोड़ कर दूसरे के यहां आ वाले नहीं हैं। तब राजा प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन्! आप कृपाकर अपने आचार्यजीकी सन्नि में मुझे ही लेजाकर मुझे नित्य यौवन वरप्रसाद दिला कर अनुगृहीत करें। श्रीकणिकृष्ण जी बोले आपके सरीखे ऐहिकभोगमात्र मेंआसक्त पामरों को मेरे आचार्य आंख उठाकर देखते तक नहीं इसलिए इस व्यर्थ मनोरथ को छोड़ दीजिये॥

इस बात को सुनकर राजा दुःखी हो गया, इसका मन चिन्तार्णव में डूब गया, राजा न समझ सका कि क्या करना चाहिये। इस दुरवस्था में पड़े हुए राजाको देखकर मन्त्रिगण आकर आश्व सन देते हुए कहने लगे कि हे राजन! आप इस वृथा विचारको छोड़ दीजिये। श्रीकणिकृष्णजी विष में भी यह प्रसिद्धि फैली हुई है कि वे भी दिव्य अचिन्त्य अद्भुत अत्युत्तम शक्तियों से सम्पन्न हैं इनकी वाणी अमृतमयी है, ये जिनके विषय में जैसी कवितायें करेंगे वे वैसे ही बन जाते हैं, ऐसे सैकड़ों घटनायें घटी हैं, यह बात जगत प्रसिद्ध है। इसलिये साक्षात् आप इनसे ही प्रार्थना कीजि इनसे स्तुति किये जाने पर आप संपूर्ण मनोरथ वाले बन जायंगे। अनन्तर किसी तरह आश्वासन प्राप्त हुआ वह राजा अगले दिन अपने स्थान पर आए हुए श्री कणिकृष्ण जी से सविनय प्रार्थना कि कि आप मुझे नित्ययौवन संम्पन्न के रूप में स्तुति कीजिये। इनकार करते हुए श्रीकणिकृष्णजी बोले कि एक श्रीमन्नारायण भगवान की ही स्तुति करने वाला मैं कभी भी नर की स्तुति नहीं कर सकता हूं तब भी राजा अत्यन्त निर्बन्ध करने लगा, निर्बन्ध किये जाने पर श्रीकणिकृष्णजी द्राविडभाषामें नरस्तु में विरक्ति को सूचित करनेवाली भगवद्विषय एक गाथा को निर्माणकर सुनाये। इस गाथा को सुनक कोप में आकर वह राजा आज्ञा दिया कि इसके बाद आप इस नगर में नहीं रह सकते हैं शीघ्र अन्यत्र चले जायें।

अनन्तर कणिकृष्णजी अपने आचार्य श्रीभक्तिसार स्वामीजी के श्रीचरणों के समीप आकर इ वृत्तान्त को सुनाकर प्रार्थना किये कि मैं इस देश से निकलनेवाला हूं, आप मुझे आज्ञा दें। तब श्रीभक्ति सार स्वामीजी बोले हैं कि मैं तुमको छोड़कर यहां क्या करूंगा, मैं भी श्रीभगवान को साथ लेक तेरे साथ चलूंगा। यों कहकर श्रीभक्तिसार स्वामीजी भक्ति के लिए अपने को बेंचने वाले भ वत्सल्य श्रीभगवान को जगाने के लिए मन्दिर के भीतर जाकर द्राविडगाथासे विज्ञापन करने ल जिसका यह संस्कृत अनुवाद है—

"कणिकृष्ण इमां नगरीं विजहत् कुत्रचिद्गमनं ननु कामयते।
तमनुव्रजतो मम भो भगवन् कणितल्पयुतोऽनुचरो भवतात्॥"

स्वामीजी के दिव्य शरीरमें अपने आदि शेषशायी अतिमानुस अप्रमेय श्रीभूदेवीसेवित दिव्यमंगलविग्रह को शीघ्र ही वैसा प्रकट किये जिसे देखकर सब लोग कृतार्थ हो जायं। अन्तर वहां उपस्थित सभी सज्जन उसी भगवत्सहाका दर्शन पाकर अपार आनन्द आश्चर्य सागरमें मग्न हुए श्रीभक्तिसार स्वामीजी के चरणारविन्दों में प्रणामकर माफी मांगकर अनुग्रहका पात्र बनकर तत्त्वोपदेश पाकर उज्जीवित हुए ॥

अन्तर श्रीभक्तिसार स्वामीजी श्रीकुम्भघोणक्षेत्र आकर वहां आदिशेष पर शयन किये हुये शार्ङ्गपाणि अपर्याप्तामृत भगवान का दर्शन कर काञ्चीके यथोक्तकारी भगवान की तरह इनके भी अपार भक्त-वात्सल्य का अनुभव किये। तथाहि—श्रीभक्तिसार स्वामीजी एक द्राविडगाथा से श्रीभगवान के प्रति प्रार्थना करने लगे उस गाथा का संस्कृत अनुवाद इस प्रकार है—

त्रिविक्रमावतारसंभवश्रमान्नु किं महावराहमूर्तिभावकालिकश्रमान्नु किम्।
मरुद्वृधातटेऽत्र दिव्यकुम्भघोणपत्तने शयान एव वर्तसे समुत्थितोऽद्य संलप ॥

अर्थ—हे भगवन्! श्रीत्रिविक्रमावतार में जो तीनों लोक का आक्रमण करना पड़ा था उसी परिश्रम के कारण, अथवा श्रीवराहावतार में भूमिका उद्धार करना पड़ा था उसी परिश्रम के कारण क्या आप कावेरी तीरमें इस दिव्यकुम्भघोणनगर में शयन करते रहते हैं; अब तो उठकर मुझसे संभाषण कीजिये। इस प्रार्थना को सुनते ही वे अपर्याप्तामृत भगवान् मनों अर्चावतार को भी विभवावतार की तरह मानकर प्रार्थना के अनुसार झट ही उठने लगे। देखकर श्रीभक्तिसार स्वामी "आपके इस आश्रितसौलभ्य की जय हो, मंगल हो" " यों मंगलाशासन करते हुये श्रीभगवान से शयन के लिए प्रार्थना किये। इसलिये ही आज भी आदिशेषशायी वे भगवान उठते हुए दर्शन देते हैं। श्रीभक्तिसार स्वामीजी उसी अपर्याप्तामृत भगवान के दिव्य मंगलविग्रह का ध्यान करते हुए वहीं बहुत काल तक समाधिमग्न रहते थे। इस तरह चार हजार सात सौ संवत्सर भूलोक में श्रीभक्तिसार स्वामी जी निवास किए हैं। भक्तों के उज्जीवन के लिए श्रीभक्तिसार स्वामीजी "नान्मुकन् तिरुवन्दादि" "विरुत्तन्दविरुत्तम्" नामक दो दिव्यप्रबन्धों को निर्माण कर अन्तमें कुम्भघोणक्षेत्र में ही परमपद को प्राप्त हो गए।

इति भक्तिसार मुनिवर्यसत्कथामतिमात्रभक्तिभरवर्धनक्षमाम्।
इह ये पठन्ति कथयन्ति भावयन्त्यथ ते भजन्ति दिवि योग्यसत्क्रियाः ॥

अर्थ—इस तरह भक्ति को बढ़ाने वाली श्रीभक्तिसार स्वामी जी की सत्कथा को इस लोक में जो पढ़ेंगे कहेंगे, मनन करेंगे वे सभी श्रीवैकुण्ठमें अपरिमित सत्कारोंको प्राप्त करेंगे ॥

श्रीभक्तिसारमुनीन्द्र वैभव समाप्त हुआ।

से उठकर कहीं अन्यत्र चले गये। अनन्तर वे ब्राह्मण क्रमानुसार वेदाध्ययन का प्रारम्भ करना चाहते थे, किन्तु अत्यन्त सोचने पर भी इस बात को नहीं समझ सके कि कहां से प्रारम्भ करना चाहिये। इसलिये भ्रमविह्वल होकर चुप बैठ गये। अनन्तर इस तरह बिसर जाने क्या कारण है यों आपस में विचारते हुये अन्त में इस निर्णयपर पहुँचे कि यहां पर आये हुए परमभागवत के विषय में हम लोगों के मनमें जो शङ्का उठी थी वही महान अपचार है, उसी का फल ही यह है। अनन्तर श्रीभक्तिसार स्वामीजी से अनुनय विनयपूर्वक माफी मांगने लगे'। अनन्तर श्रीभक्तिसारस्वामी जी उस वीथी में सुखाने के लिए पसारे गये काले व्रीहियों की राशियों से कई व्रीहियों को उठाकर नख से तोड़कर फेंक दिये वे श्रोत्रिय भी झट ही उस क्रिया को बतलाने वाले वेदवाक्य को याद्कर इस वाक्य से ही अध्ययन का प्रारम्भ करना चाहिये, यों जानकर यहां से प्रारम्भ किये। यह वेदवाक्य यह है कि "कृष्णानां व्रीहीणां नखनिर्भिन्नं कृष्णा कृटा दक्षिणा"। [यह वाक्य तैत्तिरीयचतुर्संहिता में प्रथम काण्ड में अष्टमप्रपाठक में तथा तैत्तिरीयचतुर्ब्राह्मण में प्रथम अष्टक के सप्तमप्रपाठक में मिलता है] अनन्तर वे श्रोत्रिय वे कोई अपार प्रभाव वाले ऋषिसार्वभौम हैं यों निश्चय करते हुए श्रीभक्तिसार स्वामी का सत्कार कर कृतकृत्य हो गये।

उसी अग्रहार में ही दूसरे कई बड़े-बड़े ब्राह्मण एक यज्ञ किये, श्री भक्तिसार स्वामीके अपार प्रभाव को जानने वाले कई महापुरुष उस यज्ञ के दीक्षित को सूचना दिये कि श्रीभक्तिसार स्वामी जी को यज्ञस्थल में ले जाकर बहुमान किया जाय। इस सूचना को पाते ही उस दीक्षित ने सन्तोष के साथ जल्दी आकर सविनय प्रार्थना कर श्रीभक्तिसार स्वामीजी को यागशालामें ले जाकर अत्यादर के साथ प्रथमपूजा की। पहिले युधिष्ठिरजी से अनुष्ठित राजसूययाग में प्रथमसत्कृत नन्दनन्दन श्री कृष्णभगवान के विषय में सैकड़ों कटुवचन सुनाने वाले उस शिशुपालके भाई कई मानों यहां भी रहते थे, ईर्ष्यासूया युक्त वे दुर्जन कई कर्णकठोर दुर्वचनों का प्रयोग करने लगे। इन सबको सुनकर अत्यन्त दुःखित हुये वे दीक्षित श्रीभक्तिसार स्वामीजी के चरणारविन्दों में प्रणामकर प्रार्थना करने लगे कि "हे भगवन् इन पापियों को शीघ्र ही आप गर्वहीन बना डालें"। उस बातको मानकर परम कारुणिक श्री भक्तिसार स्वामीजी एक द्राविडगाथा द्वारा अपने अन्तर्यामी सर्वस्वामी श्री मन्नारायण भगवान से प्रार्थना किए कि आप प्रकट हो जाइये। उस गाथा का संस्कृतानुवाद यह है कि—

"असूयावशानामसीषां च दर्पं समूलं निहन्तुं हरे चक्रपाणे।
यथा वर्तसे ने मनोऽन्तस्तथैव प्रकाशोभव क्षिप्रमाश्चर्यशक्ते॥"

अर्थ—आश्चर्यशक्तियुक्त हे चक्रधर भगवन् असूया के वशीभूत हुए इन दुर्जनों के गर्व को समूल नष्ट करने के लिये आप तुरन्त ही उसी रूप से प्रकट हो जाइये, जिस रूप से आप मेरे मन के अन्- विराजमान रहते हैं। याचकोंका कल्पवृक्ष आपत्ति में परमसखा श्रीभगवान अव्याज कृपासे श्रीभग—

५. ॥ श्रीशठकोप स्वामीजी महाराज का वैभव ॥

वृषे मासि विशाखर्क्षेऽवतीर्णस्य महात्मनः। शठारातिमुनीन्द्रस्य वैभवं प्रतिपद्यते ॥

अर्थ—वृषभमास में विशाखानक्षत्र में अवतार लिये हुये महात्मा श्रीशठकोप स्वामीजी महाराज का वैभव वर्णन किया जाता है॥

पाण्ड्यदेशमें गङ्गा यमुना सरस्वती इत्यादि नदियों से अधिक वैभवसे सम्पन्न श्रीताम्रपर्णी नदी के तीरमें कुरुकापुरी नामक एक महानगरी विराजमान रहती है। वहां पर वंशपरम्परा से श्रीमन्नारायण भगवान के ही आराधन में चित्त लगाने वाले परमभागवतों के महाकुल में कारि नामक एक पूजनीय महा भागवत उत्पन्न होकर शोभा देने लगे। वे युवत्वावस्था में आने पर केरल मण्डल में "तिरुवण्परिशारम्" नाम के सुप्रसिद्ध दिव्यदेश में जन्म ली हुई "उडैयनङ्कैयार" नामक कन्या को अपनी सहधर्मचारिणी बनाये अर्थात् उनसे विवाह किये। श्वशुरालय में कुछ काल तक रहकर अनन्तर धर्मपत्नी के साथ कुरुकापुरी में आकर यथाशास्त्र गृहस्थाश्रम धर्मों का अनुष्ठान करते हुये विराजमान रहते थे। ये एक समय अपनी धर्मपत्नी के साथ "तिरुक्कुरुंगुडि" नामक दिव्य देशमें जाकर वहां विराजने वाले वरप्रद श्रीभगवानकी महिमा को सुनकर उनकी सन्निधि में सविनय प्रार्थना करने लगे कि "हे भगवन्! आप हमको एक पुत्र सन्तान देने के लिए अनुग्रह करें।" प्रार्थना किये जाने पर वे भगवान परमकृपा से प्रसन्न होकर अर्चकद्वारा यों अनुग्रह किये हैं कि—"अहमेव समागत्य युवयोस्तनयात्मना प्रादुर्भवेयमचिराद्विषादो वां विलीयताम्॥"

अर्थ—मैं शीघ्र ही आप दोनों के पुत्ररूप से अवतार लूंगा, आप दोनों का विषाद दूर हो। अनन्तर श्रीभगवान तीर्थमालादि देकर उनका विसर्जन किये। इस तरह अत्युत्तम अपार अनुग्रह को पाकर महात्मा कारिजी महाराज पहिले की तरह कुरुकापुरी में आकर निवास करते हुये कुछ काल बीतने पर देखने लगे कि पत्नी गर्भवती हुई हैं। वह स्त्री वृषभमास में विशाखानक्षत्र युक्त शुभ समय में एक दिव्य शिशुको उत्पन्न किया। इस दिव्य शिशुका प्रभाव वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता है। अपार प्रभाव से देदीप्यमान आपके विषयमें बड़े बड़े सत्पुरुषों को भी यह निर्णय करना कठिन हो गया कि आप किनका अवतार हैं, तभी तो विद्वानों में भी तरह तरह की शङ्कायें बढ़ती आई हैं कि "क्या ये साक्षाद् भगवानका ही अवतार हैं, अथवा नित्यमुक्तों में से किसी एक का अवतार हैं, अथवा बहुत से नित्यसूरियों का सम्मिलित अवतार हैं, अथवा विलक्षण भगवत्कृपा के प्रभाव से लोकोत्तर वैभव पर पहुँचाए गए कोई एक बद्ध चेतन ही ये हैं"। पहिले कहे गए तिरुक्कुरुंगुडि दिव्यदेशके भगवान के अनुग्रह वचन के अनुसार वे भगवान ही इस शिशु के रूपमें अवतार लिये हैं ऐसा मानना ही उचित है।

यह सम्प्रदायसंमत सिद्धान्त है कि जहां श्री भगवान अवतार लेना चाहते हैं वहां पहले से ही आदिशेषजी पहुँच जाते हैं। जो निवास, स्थान, शय्या, वस्त्र, पादुका, आसन, तकिया और छत्र इत्यादि नाना शरीरों को लेकर श्री भगवान की तरह-तरह की सेवा करने में बहुत उत्साह रखते हैं। इसलिए ही आदिशेषजी श्रीभगवदवतार रूपी इस दिव्य शिशु की वर्षा धूप इत्यादि बाधाओं को हटा कर रक्षा करने के लिये इमली वृक्ष के रूप में पहले से ही वहां अवतार लेकर रहते थे॥

प्रसव के दिन से लेकर यह दिव्य-शिशु न कभी रोता था, न कभी दूध पीने का ही उत्सुक होता था, इन सब लौकिक व्यापारों को छोड़ दिया था, इसको बिलकुल थकावट नहीं होती थी, बहुत आनन्द से विराजमान रहता था। इस तरह इस दिव्य-शिशु की महिमा को देखकर माता पिता दोनो ही बहुत आश्चर्य चकित हुए, सब तरह से श्री भगवान में भार छोड़कर अन्त में निश्चिन्त हुए। बारहवें दिन श्रीकुरुकानगरी दिव्यदेश के अधिष्ठाता श्री आदिनाथ भगवान की सन्निधि में इस दिव्यशिशु को ले जाकर श्री भगवदर्शन कराकर वहीं समीप में स्थित इमली वृक्ष के नीचे सोने की डोलिका में शयन कराकर पालन पोषण किये।

शिशुओं के जन्म लेने समय शठनामक एक वायु प्रकट होता है, गर्भवास के समय सभी शिशु ज्ञानवान होकर रहते हैं, जब वे जन्मते हैं, तब उन्हें यह शठ-वायु छूलेता है। छूकर उन्हें अज्ञानी बना देता है, और रोदन इत्यादि लौकिक व्यापारों में फँसा देता है, वही शठवायु इस दिव्य शिशु पर भी जन्मते समय आक्रमण करने लगा, तब यह दिव्य शिशु एक हुँकार से उस वायु को हटा दिया, इसलिए इस शिशु की 'शठकोप' नाम से प्रसिद्धि हुई। शठरिपु, शठारि, शठारति इत्यादि इस शिशु के पर्याय नाम प्रसिद्ध हैं।

इमलीवृक्ष के नीचे विराजते हुए ये शठकोप स्वामीजी महाराज सोलह साल तक आंख तक नहीं खोले, मौनी रहते थे, चारों तरफ इनकी दिव्यतेज की छटा फैलती थी, इनके माता पिता सोचने लगे कि यह क्या है? क्यों ऐसा हुआ? बहुत कुछ सोचने पर जब कुछ तत्व नहीं पाये, तब इस निश्चय पर आये कि हम दोनों के अनवधानसे उत्पन्न किसी भगवदपचार से ही यों हो गया, इससे वे बहुत चिन्तित और दुःखी भी रहते थे, उस समय श्रीपरमपदनाथ भगवान की आज्ञा से श्री विष्वक्सेन जी वहाँ रहस्य में आकर श्रीशठकोप स्वामीजी को पञ्चसंस्कार देकर सभी रहस्यार्थों का उपदेश देकर चले गये।

सोलह कलाओं से परिपूर्ण चन्द्रमा की तरह सोलह वर्षों से परिपूर्ण श्री शठकोप स्वामी जी महाराज उसी इमली वृक्ष की छाया में पद्मासन से बैठ कर श्री भगवद्-ध्यान करते हुए विराजते थे, इन के श्रीहस्त में ज्ञान मुद्रा शोभा देती थी।

उस समय मधुरकवि नामक एक महान ब्राह्मणोत्तम क्षेत्रों और तीर्थों की यात्राके लिये उत्तर भारत में पर्यटन कर रहे थे। वे एक समय श्रीशठकोप स्वामीजी महाराजके प्रभाव को सुनकर और उनके दिव्य-

सर्वत्र प्रचार करने के लिये ही सभी दिव्यदेशों में श्री भगवान की "दिव्यपादुका" श्रीशठकोप नामसे प्रसिद्ध होकर दर्शकों के शिर में विराजमान होकर शोभा पा रही है।

शास्त्रों में कहा गया है कि "प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः। प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधि च। वदन्ति सकला वेदास्सेतिहासपुराणकाः। मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्त-पारगाः।" अर्थ- प्राप्य परब्रह्म का स्वरूप, प्राप्ति करने वाले जीवात्मा का स्वरूप, प्राप्ति के उपाय का स्वरूप, प्राप्ति से मिलने वाले फलका स्वरूप और प्राप्ति के विरोधी का स्वरूप, इन पांच अर्थों का ही वर्णन इतिहास-पुराण सहित सभी वेदो में मिलता है, वेदवेदान्तो के पारंगत महात्मा मुनिगण भी इस अर्थपञ्चक का ही निरूपण करते हैं। इस अर्थपञ्चक के विषय में सुविशदरूप से श्रोताओं को ज्ञान पैदा करानेवाला ग्रन्थ श्रीशठकोप स्वामीजी महाराज का दिव्यप्रबन्ध ही है। जोकि उनके स्वानुभवमय उपदेश रूप से प्रगट हुआ था। इसलिये श्रीवैष्णव प्रपन्न मुमुक्षु भक्त भागवत इन सभी आस्तिकों के लिये श्रीशठकोप स्वामीजी महाराज के दिव्यचरण ही शरण हैं॥

इत्थं शठकोपमुनेर्वैभवमतिभोग्यमप्रमेयं च।
अनुसन्दधतां सुधियाममलार्थज्ञानमनुपमं भविता॥

अर्थ=इस तरह अपार अतिभोग्य श्रीशठकोप स्वामीजी महाराज के वैभव का अनुसन्धान करनेवाले सज्जनों को अत्युत्तम निर्मल तत्वज्ञान प्राप्त होगा।

श्रीशठकोप स्वामीजी महाराज का वैभव समाप्त हुआ॥

---

६. ॥ श्रीकुलशेखरस्वामीजी महाराज का वैभव ॥

कुम्भे मासि पुनर्वसुनक्षत्रे भुवि कृतावतारस्य।
श्रीकुलशेखर-सूरेर्वैभवमतिहृद्यमभिदधाम्यधुना॥

अर्थ=कुम्भमास में पुनर्वसुनक्षत्र में भूलोक में अवतार लिये हुए श्रीकुलशेखर स्वामीजी महाराज के मनोहर वैभव का अब वर्णन करता हूं॥

चेरमण्डलमें कुवकुटकोड-नामक राजधानी में दृढव्रतनामक एक क्षत्रिय साम्राज्य-सिंहासन पर विराजमान थे। सन्तान नहीं होने से वे बहुत दुःखित रहते थे। महात्मा लोग उनको यह उपाय बताये कि "आप श्रीमन्नारायण भगवान का खूब आराधन करें, उस से आपका यह दुःख दूर हो जायगा"। वे भी इस उपदेश को मानकर श्रीमन्नारायण भगवानका खूबी से आराधन करने लगे। उसके फलके रूपमें आप तिरुवञ्चिक्कलं नामक दिव्यक्षेत्रमें अपनी प्रधान पट्टरानी से उत्पन्न विलक्षण दिव्यतेज से शोभायमान एक पुत्ररत्न को प्राप्त किये। अपार आनन्द से प्रफुल्लितहृदय ये चक्रवर्ती

तेज के प्रकाश को देखकर उस तेजके उत्पत्तिस्थान को खोजते हुए श्रीअनोभाजी से दक्षिणभारत। तरफ आये, अन्तमें ताम्रपर्णीमें आकर श्रीशठकोप स्वामीजी महाराजकी सेवामें उपस्थित हुए 'श्रीशठकोप स्वामीजी का चैतन्य है, वा, नहीं' इस बातको जानने की इच्छासे श्रीमधुरकवि स्वामी एक पत्थर को उठाकर श्रीशठकोप स्वामीजी के पास फेंके। उस शब्द को सुनकर श्रीशठकोप स्वामी महाराज आंखें खोलकर देखने लगे। अनन्तर 'इनकी बोलने की शक्ति है, वा, नहीं' इस बात को जानने की इच्छा से एक प्रश्न उपस्थित किये, झट ही समुचित उत्तर को पागये। अनन्तर श्रीमधुरक स्वामीजी का मन महानन्द सागर में मानो डूबने लगा, आप इन को सर्वज्ञ समझ गये, और चाह लगे कि इनका आश्रय लेकर मैं कृतार्थ हो जाऊं। इस लिये आप उनके चरणारविन्दों में प्रणामम करतिकर हाथ जोड़ते हुए प्रार्थना करने लगे कि 'हे भगवन् मुनिसार्वभौम! आप कृपाकर मु सदुपदेश दें जिससे मुझको तत्व-हित-पुरुषार्थ में सुविशद ज्ञान हो जाये।' इस प्रार्थना से दयार्द्र होक श्रीशठकोप स्वामीजी इन को स्वीकार किये और ये भी अन्तरङ्ग सेवक बनकर रहने लगे।

अनन्तर एक समय श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान श्री-भूमि-नीलादेवियों के साथ गरुडारूढ होक श्रीशठकोप स्वामीजी के सामने उपस्थित होकर अपना दर्शन कराकर श्रीशठकोप स्वामीजी की सर्वज्ञत्व को दृढ करायें। ऐसे ही श्रीरङ्गनाथ, श्रीवेङ्कटगिरिनाथ, श्रीहस्तिगिरिनाथ इत्यादि अन्यान्य दिव्यदेश वैभव भगवान भी आकर दिव्यदर्शन देकर अपने अपने दिव्यगुणगणों का अनुभव कराये। अनन्त शब्दों में अमेकर श्रीशठकोप स्वामीजी महाराज ने अपार भगवदनुभव के परीवाह के रूप में दिव्य मूर्तियों को बाहर प्रकट करना चाहा। १. तिरुविरुत्तम्, २. तिरुवासिरियम्, ३. पेरियतिरुवन्दादि और ४. तिरुवाय्मोलि नामसे प्रसिद्ध चार दिव्यप्रबन्धों को क्रमसे प्रगट किया। ये प्रबन्ध द्राविडवेदसंहित कहलाते हैं और ऋग् यजुस् साम अथर्वरूपी चारों वेदों के समान कोटिके हैं। पास में विराज हुए श्रीमधुरकवि महाराज ने दिव्यप्रबन्धों को परमभक्ति से ताडपत्रों में आरूढ कराया।

इन चारों दिव्यप्रबन्धों में से सहस्रगीति नामसे सुप्रसिद्ध और सामवेदके सारभूत तिरुवाय्मोलि नामक प्रबन्धरत्न का गान ही श्रीमधुरकवि स्वामीजी महाराज के नित्यकालक्षेप में उपयुक्त होता रहा श्रीमन्नाथमुनि, श्रीयामुनमुनि, श्रीरामानुजमुनि, श्रीवत्साङ्कमिश्र, और श्रीभट्टाद इत्यादि वेद, वेदान्त और वेदाङ्गमार्ग के पार पहुँचे हुए विद्वन्मणि महापुरुषगण भी इसी सहस्रगीति से ही तत्व, हित पुरुषार्थों में विमल विशद और विपुल विज्ञानको पाकर अपनी आचार्यपदवी को निभाये हैं।

दिव्य-बकुल-पुष्प-मालाकी भूषण से भूषित होने के कारण श्रीशठकोप स्वामीजी महारा 'बकुलाभरण' तथा 'बकुलभूषण' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। परमभावज्ञ ही मानो मत्त गज है, उन पर सिंह के स्वामीजी अंकुश के समान विराजते थे, इसी कारण इनका 'परांकुश' नाम पड़ा। श्रीशठको स्वामीजी महाराज के अपार दिव्यवैभव को सूचित करने के लिये यह एक निदर्शन ही पर्याप्त है कि "शठारिपुर्यः एव कमलापतेर्दिव्यकविः" अर्थात् 'एक श्रीशठकोप स्वामीजी ही श्रीभगवान के दिव्य कवि हैं' इस श्रीसूक्ति के अनुसार भगवद्भक्त कवियों में आप ही अग्रगण्य थे, इस बात को जगत

श्रीरामायण के दिव्य-अर्थों को खुद जानने में तथा जनाने में समर्थ होते हुए भी श्रीकुलशेखर स्वामीजी महाराज प्रवचन-परायण महात्माओं के श्रीमुख से सुनने को ही परमभोग्य मानते हुए रम-भागवत एक विद्वान् को अपने स्थान में पधराकर उनके श्रीमुख से श्रीरामायण कथामृत का आस्वादन करते हुए कालक्षेप करते थे। इस तरह श्रीमद्रामायण का कालक्षेप चलते चलते आरण्यक काण्डका प्रवचन होते समय जब यह श्लोक आया कि 'चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्। एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति'। अर्थात् 'एक तरफ भयंकर काम करने वाले चौदह हजार राक्षस हैं और एक तरफ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं, न मालूम यह युद्ध किस परिणाम में पहुँचेगा।' तब इस श्लोक का व्याख्यान खूबी से होने लगा, तब कालान्तर में देशान्तर में घटी हुई इस घटना को मानो तत्काल घटती हुई मानकर भक्ति की सीमा भूमिपर पहुँचे हुए श्रीकुलशेखर सूरिजी महाराज उच्चस्वर से कहने लगे कि इस तरह जब श्रीभगवान पर भयंकर आपत्ति टूट पड़ी है तब क्या चतुरङ्ग सैन्य समेत हम लोगों को चुप चाप रहना उचित है? कभी नहीं, उस जीवन को धिक्कार है जो श्रीभगवान के विषय में कुछ भी सेवा नहीं किया हो, हम लोगों को इस तरह व्यर्थ जीवनवाले नहीं बनना चाहिये, अभी ही हम लोग यहाँ से चतुरंगसैन्य के साथ पञ्चवटी पर्वन्त जाकर सहाय-रहित श्रीरामचन्द्रजी की शक्ति अनुसार सहायता पहुँचाकर विजयश्रीसमेत श्रीभगवान का दर्शन कर कृतार्थ होवें' इस तरह जोर से कहते हुए सेना को निकलने के लिये आज्ञा दते हुए आप जाने लगे। इस तरह आवेश कार्य में बढ़ते हुए श्री स्वामीजी के संभ्रम को देखकर कथावाचक आश्चर्य चकित हो गये, सदुपाय सोचनेमें वे बड़े निपुण थे, इसलिये कथावाचक अपने चातुर्य से झट ही इस श्लोक को बांचकर अर्थ कहने लगे कि 'तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्। बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे॥" अर्थात्, श्रीरामचन्द्रजी सभी राक्षसोंको मार डाले, महर्षियों को सुख पहुँचाये, उनको देखकर श्रीसीताजी अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीभगवान का आलिंगन किया' इस विजय-पद्य को बांचकर बिना सहायके शौर्य दिखानेवाले, अपार साहसवाले, राक्षससैन्य को मिटाने में समर्थ, श्रीरामचन्द्र भगवान की विजयश्री को खूबी से वर्णन कर कथावाचकजी श्रीकुलशेखर स्वामीजी के असामयिक कोलाहल को शान्त किये। तब से लेकर कथावाचक बहुत होशियारी से काम लेने लगे, जहां जहां श्रीरामचन्द्रजी के विजयवृत्तान्त आते थे वहां वहां खूबी से वर्णन करते थे, जहां जहां श्रीभगवान के क्लेशवृत्तान्त आवें वहां झटपट कथा कहकर आगे बढ़ते थे।

एक दिन वे कथावाचक किसी काम के लिये किसी गांव को चले गये थे, श्रीरामायण प्रवचन के लिये अपने पुत्रको श्रीस्वामीजी के पास भेज दिये थे। किन्तु उनके पुत्र श्रीकुलशेखर स्वामीजी की प्रकृति को नहीं जानते थे। इसलिये उस दिन के प्रसंग में आई हुई दुःखमयी सीताहरणकी घटना को बहुत विस्तार से वर्णन करने लगे, उस घटना को सुनते ही श्रीकुलशेखरजी महाराज आवेश में आकर कहने लगे, कि "अभी ही मैं जल्दी से जाकर समुद्र को लांघकर रावण को संहारकर अखिलजगत

अपने पुत्र का 'कुलशेखर' नाम इस विचार से रखे कि यह दिव्यशिशु हमारे कुलमें अपार कीर्ति को लावेगा, क्यों कि इस शिशुमें ऐसे गुणलक्षण मौजूद हैं।

श्रीकुलशेखरजी शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की तरह हर रोज बढ़ने लगे, समय समय पर चौल उपनयन इत्यादि संस्कारों से संपन्न हुए, अङ्ग उपाङ्ग सहित वेदोंका अध्ययन किये, अपनी क्षत्रिय जाति के उपयुक्त नीतिशास्त्र, धनुर्शास्त्र, गज-अश्व अरथ-शास्त्र इत्यादि शास्त्रों को भी परिपूर्णरीति से पढ़े, आप थोड़े दिनों में अपार चातुर्य को प्राप्त हो गये। आपके लोकोत्तर चातुर्यको देखकर मन ही मन अपार आनन्दको मनाते हुए पिता श्रीदृढव्रत सम्राट् आप को युवराज पदमें अभिषेक किये।

अनन्तर श्रीकुलशेखरजी चतुरङ्ग-बल-समेत होकर दिग्विजय के लिए निकल पड़े, चोल, पाण्डय इत्यादि देशाधिपों को जीते, उन मण्डलों को अपने अधीन बनाये, "चेर-चोल-पाण्डय-प्रभुवर" इत्यादि अनेक विरुदों से विभूषित हुए, चारों तरफ आपकी कीर्ति फैलने लगी, इस तरह आप मध्याह्न सूर्य की तरह देदीप्यमान होकर विराजमान रहे। अनन्तर दृढव्रत सम्राट् "वार्धके मुनिवृत्तीनाम्" अर्थात् 'बुढ़ापेमें रघुवंशी इन्द्रिय जनजन्य-आनन्द को लेते थे' इस उक्ति के अनुसार तपस्वी बनना चाहते थे, इसलिये अपने सुयोग्यपुत्र कुलशेखरजी को राजसिंहासन में विराजमान कराकर पट्टाभिषेक कराकर संपूर्णभुवनभार को आप के कन्धों में रखकर पूर्वजों के आचार के अनुसार आप तपोवन चले गये॥

गुणों के महान् निधि श्रीकुलशेखर सम्राट् पिताजी की आज्ञा को शिर से धारण करते हुए अणुमात्र भी नीतिमार्ग से नहीं बिछुड़ते थे, 'ये दूसरे रामचन्द्रजी हैं' यों सभी प्रजाओं की प्रशंसा का पात्र बनते हुए अच्छी तरह प्रजाओं का परिपालन करते थे, समयमें गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर सीता के समान गुणवती इला नामक पुत्री को तथा दृढव्रत नामक पुत्र को प्राप्त किये, सभी प्रकार की संपत्ति समृद्धियों से देदीप्यमान होते हुए अपार सन्तोष की सीमा में पहुँच गये। इस तरह अपार दैहिक वैभव को भोगते हुए आपका मन उससे विरक्त होकर पारलौकिक श्रेयःसाधन में लग गया। इसलिये आप श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण इत्यादि शास्त्रोंमें प्रवीण विद्वत्-श्रेष्ठों के सहवास में रहते थे, इससे आपका मन विशुद्ध हुआ, लौकिक व्यवहारों से आपकी विरक्ति होने लगी श्रीमन्नारायण भगवान की निर्हेतुक कृपा का आप पात्र बन गये, 'एक मात्र श्रीमन्नारायण भगवान ही परतत्व हैं' इस दृढ अध्यवसाय को आप सर्वदा बढ़ाते ही रहे, श्रीभगवान के विभवावतारों में से श्रीरामावतार में आपका प्रगाढ़ अनुराग था, अर्चावतारोंमें से श्रीरङ्गनाथ भगवान के श्रीचरणों में आप की अपार भक्ति रहती थी, श्रीरामायण के पठन पाठन में आपका बहुत उत्साह था। आश्रितों की सेवा करने में आपकी बहुत उत्सुकता रहती थी, अतिथि सत्कारके कारण आपकी कीर्ति चारों तरफ फैलने लगी, अपनी गृहपूजा में श्रीरामचन्द्र भगवान् तथा श्रीराजगोपाल भगवान के परम सुन्दर सर्वाभरण भूषित दिव्यमंगल विग्रहों का आराधन करते हुए तथा उनके नित्यनैमित्तिक कैङ्कर्यादिकों को भी धूमधाम से करते हुए अपनी अकृत्रिम भगवद्-भागवत-निष्ठा को आदर्श में उनका के सामने रखने लगे।

की माता हमारी माता श्रीसीताजी को लाकर हमारे परमपिता श्रीरामचन्द्र भगवान के श्रीचरणों अर्पण कर देता हूँ" इस तरह चिल्लाते हुए बाणों को लेते हुए सेना को चढ़ाई करने के लिये आ देकर आप लंका की तरफ दौड़ने लगे। इस तरह के प्रवाह वेग को देखकर भूमिमें रहने वाले मनु आकाश में रहने वाले देवगण व्याकुल होकर चिन्तन करने लगे कि "इसका परिणाम क्या होगा श्रीकुलशेखरजी महाराज "बाणों से ही समुद्र को पार करूंगा" यों उद्-घोषण कर जलमें उतर कण्ठपर्यन्त जलमें जब पहुँच गये, तब आपकी अपार भक्ति को देखकर इनको रोकने के लिये दूस किसी उपाय को नहीं समझते हुए श्रीभगवान रामचन्द्रजी सीता लक्ष्मण समेत आकर आपको दिव्य दर्शन देकर कहने लगे कि "मैं अपने अपार पराक्रम से राक्षसों का संहार करके श्रीसीताजी को लाया हूँ, आप घबराये नहीं, आइये नगर चलें।" यों कहकर सपरिवार श्रीकुलशेखर स्वामीजी लौटाकर शहर में पहुँचाकर अन्तर्धान हो गये। यह कथा मानो इस बात को सूचित करती है कि प्र किस तरह संसार सागर के पार पहुँचाते हैं। इस तरह श्रीकुलशेखर स्वामीजी का भगवत्-कथाओं अपार अभिनिवेश था, जो वाणी से वर्णन किया नहीं जा सकता है॥

पौराणिकों के मुख से अपार श्रीरङ्ग-माहात्म्य को सुनते ही श्रीकुलशेखर स्वामीजी के मनमें इच्छा बढ़ने लगी कि—"कदाऽहं कावेरी-तट-परिसरे रत्ननगरे शयानं भोगीन्द्रे शतमख-मणि श्यामल-रुचिम्। व्यालोक्ये लोचन् मधुमथन नागपत हरे मुरारे गोविन्देत्यनिशमधनेष्यामि दिवसान्॥" अर्थ—मैं कब कावेरी के तटमें श्रीरङ्गनगर में आदिशेषजी पर शयन करनेवाले इन्द्रनील-मणि के समान श्यामल-कान्तिवाले श्रीरङ्गनाथ भगवान का सेवन करता हुआ 'हे मधुमथन! हे नागपत! हे हरे! हे मुरारे! हे गोविन्द! यों चिल्लाता हुआ काल यापन करूंगा इस तरह जब आपकी इच्छा बहुत बढ़ गई, तब आप परिजन परिचारों के साथ श्रीरङ्ग जाने के लिये उद्योग करने लगे। मन्त्रिगण मिलकर विचारने लगे कि 'यदि ये श्रीरङ्गक्षेत्र जायेंगे तो वहीं इनको निवासनिवास करने की इच्छा अवश्य हो जायगी, फिर यहाँ लौट आने का विचार ही नहीं करेंगे, इसलिए इनको रोकने के लिये कोई उपाय ढूंढना चाहिये' इस तरह विचारते हुए मन्त्री लोग अन्तमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'प्रस्थान करते समय यदि श्रीकुलशेखर स्वामीजी के सामने परम भागवत श्रीवैष्णव अतिथि के रूप में उपस्थित कर दिये जायें, तो इनका अतिथिसत्कार करने के लिये श्रीकुलशेखर स्वामीजी यहीं ठहर जायेंगे' इस तरह का निर्णय करके मन्त्रिगण श्रीकुलशेखर स्वामीजी को प्रस्थान करते देखकर इनके सामने परमभागवत श्रीवैष्णवों को अतिथि के रूपमें पहुँचा दिये। उस समय श्रीकुलशेखर स्वामीजी के मनमें अविदित रूप से यही शास्त्रार्थ जम गया था कि 'यत्फलं सप्तजन्मानां विष्णोराराधनात् फलम्। महद्वैष्णवपूजायाः फलेन न समं भवेत्।' अर्थ—'सात हजार सात जन्म भगवान का आराधन करने में जो फल होता है, वह फल एकबार श्रीवैष्णव की सेवा करने से मिलनेवाले फल के बराबर नहीं हो सकता।' इस शास्त्रार्थ को मन में दृढ़ बैठ जाने के कारण श्रीकुलशेखर स्वामीजी के मनमें श्रीवैष्णवों की आराधना में उत्साह बढ़ने लगा, तथा श्रीरङ्ग

जाने का कुतूहल घटने लगा। आप खूबी से भागवतों की सेवा करते थे। इस तरह जब जब श्रीकुलशेखर स्वामीजी श्रीरङ्ग जाने के लिये उद्योग करते थे तब तब मन्त्रिगण उपरोक्त उपाय को ही काम में लेते थे। इसलिये श्रीवैष्णवाराधन में ही आपकी प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ने लगी, रंगयात्रा की प्रवृत्ति तो घोषणामात्र में रह गई। इसीलिये तो आपके विषय में यों स्तुतिश्लोक आजकल भी अनुसन्धान में रहता है कि 'घुष्यते यस्य नगरे रङ्गयात्रा दिने दिने। तमहं शिरसा वन्दे राजानं कुलशेखरम् ॥' अर्थ–जिन के राज्य में प्रतिदिन श्रीरंगयात्रा की घोषणा होती है मैं उन राजाधिराज श्रीकुलशेखर स्वामीजी को प्रणाम करता हूं॥

जब श्रीकुलशेखर स्वामीजी महाराज की भागवताराधन के विषय में अपार प्रेम की कीर्ति चारों तरफ फैलने लगी, तब चारों तरफ से भागवतसमाज जुटने लगा। अनेक भागवत राजगृह में बिना शंकासंकोच के आने जाने लगे। उन भागवतों में श्रीकुलशेखर स्वामीजी की इतनी प्रीति बढ़ गयी जिसे वाणी से कहना कठिन है! ऐसी परिस्थिति में मन्त्रिगण अत्यन्त असूया करने लगे और विचारने लगे कि किसी तरह से इन भागवतों के विषय में महाराज के मन में विद्वेष और जुगुप्सा भाव को पैदा कर देना चाहिये॥

श्रीरामनवमी का महोत्सव सन्निहित हुआ, तदर्थ अपरिमित भूषण संगृहीत होने लगे। राजभवन में श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति का तथा अन्य दिव्यमंगलविग्रहों का दिव्याभिषेक कराने के लिये श्रीविग्रहों से दिव्यभूषण उतारकर रखे जाने लगे, आराधक-गण विपुल वेदघोष और वाद्यघोष के साथ बड़े समारोह से अभिषेक कराये। उस समय जब राजाधिराज इत्यादि सभी भक्तमंडली श्रीभगवत्सेवा में मन लगाकर तल्लीन थी, तब मन्त्रिवर्ग भूषणों की ढेरसे किसी एक बहुमूल्य नवरत्नमाला को चुराकर छिपा दिये। अनन्तर जब श्रीभगवान का शृङ्गार करने का प्रकरण आया, तब अर्चकलोग उस दिव्यभूषण को न देखकर अत्यन्त भयभीत होते हुए राजाधिराज श्रीकुलशेखर स्वामीजी के समक्ष निवेदन किये। उस समय सम्राट् ने मन्त्रियों को बुलाकर आज्ञा दिया कि आप जल्दी ही भूषणके चोरको ढूँढ़कर लाइये। उस वक्त मन्त्री लोग उत्तर दिये कि 'हे भगवन् महाप्रभो! श्रीवैष्णव भागवत नामधारी ये जो मिथ्याभक्त झूटे-भक्त इधर उधर मनमानी संचार करते हैं, संभव है ये ही लोग श्रीभगवान के भूषण की चोरी किये होंगे, दूसरों की इतनी धृष्टता कभी नहीं बढ़ सकती है, हम लोग शपथपूर्वक कह सकते हैं कि इन्हें छोड़कर भूषण अन्यत्र कहीं नहीं गया है, इनको ही पहिले डांट डपटकर दबाना चाहिये, ऐसा करने पर जल्दी ही वह दिव्यभूषण मिल जायगा। इस तरह कहकर राजा के मन में श्रीवैष्णवों के प्रति वैमनस्य को उत्पन्न करने के लिये ही मन्त्रियों ने भूषण की चोरी की॥

अब अत्यंत साहसिक मूर्खमन्त्रियों ने यों कहा, तब श्रीकुलशेखर स्वामीजी महाराज हाहाकार करते हुए दोनों कानों में हाथ रखकर बहुत दुःखी हुए। श्रीवैष्णवों के शीलादिसद्गुणों को जानने के कारण आप का श्रीवैष्णवों में बिलकुल सन्देह नहीं हुआ, किन्तु झूट बोलनेवाले मन्त्रियों के विषय में ही आपका अपार क्रोध हुआ और आप ज़ोरसे कहने लगे कि 'श्रीवैष्णव महानुभाव कभी भी मनसे भी इस तरहके पातक को नहीं कर सकते हैं, यह बात अत्यन्त सत्य है, इस बातको सत्य साबित करनेके लिये मैं एक अद्भुत काम करूंगा, आप सब देखें' यों कहते हुए आप भरी हुई सभा में आज्ञा दिए कि 'बहुत दिनों से भूखे किसी एक भयंकर कृष्णसर्प को अन्दर डालकर मुँह ढककर एक घड़े को लाया जाय' अब घड़ा लाया गया तब आप भरी हुई सभा में उपरोक्त वाक्य को ज़ोर से बोलते हुए घड़े के अन्दर हाथ डालने लगे, और कहे कि 'मनसा-वाचा-कर्मणा शुद्ध ये श्रीवैष्णव अगर श्रीभगवान के भूषण को चोरी किये हों तो यह काला सर्प मेरे हाथ को काटे, मेरा प्राणवियोग हो' सत्य में बंधा हुआ वह सर्प क्योंकर काटे ? किन्तु स्वामीजी की सत्यवादिता तथा भागवतों के अपार प्रभाव ये दोनों गुण जगत के सामने चमक उठे ॥

इस समय मन्त्रिगण अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप करते हुए अत्यन्त भयभीत होकर स्वामी जी के श्रीचरणों में प्रणामकर हाथ जोड़ते हुए विनय के साथ अपने दुष्टत्वापन को स्वीकार करते हुए क्षमाप्रार्थना करने लगे, उस समय उन के नेत्रों से आँसुओं की धारा निकलने लगी। क्षमादान श्रीस्वामीजी महाराज कहने लगे कि 'अस्तु, इस के बाद कभी भी आप लोगों को मनसे वाणीसे या कायसे भागवतों के विषय में द्रोह नहीं करना चाहिये श्रीभागवतों के चरणों में सर्वविध परिचर्या करते हुए आप लोग इज्जीवन को यापन करें। अब किये हुए पातक का प्रायश्चित्त यही है कि श्रीभागवतों का चरणोदक लिया जाय' यों कहकर श्रीभागवतों से प्रार्थनाकर उनका चरणोदक लेकर मन्त्रियों को पिलाये। यों श्रीस्वामीजी महाराज मन्त्रियों को उज्जीवित किये ॥

अनन्तर राजाधिराज श्रीकुलशेखर स्वामीजी महाराज नानादोषों के भण्डार राज्यशासन को नहीं चाहते हुए अपने पुत्र को राज्य में अभिषेक कराकर श्रीरंगनाथ भगवान के साथ ही अपना शुभविवाह होने को चाहनेवाली इला नामक अपनी कन्या को भी साथ लेकर श्रीरंगम् आकर बड़े प्रेमसे श्रीरंगनाथ भगवान का दर्शन कर श्रीभगवान के साथ अपनी कन्या का विवाह कराकर भगवद्-भागवत आराधना करते हुए उस श्रीरंगधाम में ही कई सालतक विराजे रहे। अनन्तर श्रीवेंकटाद्रि श्रीमद्वोम्बा इत्यादि दिव्यदेशों में घूमकर वहां वहां श्रीभगवान का मंगलाऽऽशासन कर संसार-भयरूपी रोग को नाश करने में औषधरूप में काम देने वाले 'पेरुमाल तिरुमोलि' नामक द्राविडवेदमय दिव्यप्रबन्ध को स्वानुभव के परीवाद के रूपमें निर्माणकर ६० साल की अवस्था में परम पद पधारे ॥

ये श्रीकुलशेखर दिव्यसूरि ही अपने दिव्यप्रबन्ध में श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान के विषयमें प्रस्तुत-दशक में प्रार्थना किये हैं कि 'हे वेंकटेशनाथ ! आपके दिव्यमन्दिर में सोपानरूप को पाकर मैं आपके

मुखारविन्द का दर्शन करता रहूँ।' इसलिये ही आजकल भी सभी दिव्यदेशों में संप्रदाय रसिक सज्जन लोग मुख-मण्डप में रहनेवाले बड़े सोपान को कुलशेखर सोपान के नाम से व्यवहृत करते । यह ध्यान देने की बात है।

इत्थं श्रीकुलशेखरसूरिवरस्य प्रभावमतिहृद्यम् ।
ये ध्यायन्ति वदन्ति प्रलिखन्ति त एव धन्यजन्मानः ॥

अर्थ—इस तरह श्रीकुलशेखर सूरिजी के मनोहर प्रभाव का जो लोग ध्यान करते हैं कहते हैं । लिखते हैं उनका ही जन्म धन्य है ॥

इति श्रीकुलशेखर वैभव समाप्त ॥

---

७. श्रीमट्टनाथस्वामी जी का अर्थात् श्रीविष्णुचित्तसूरिका वैभव ॥

मिथुने मासि स्वात्यां भुव्यवतीर्णस्य भट्टनाथस्य ।
सूरेर्वैभवमतुलं संप्रति विज्ञापयामि मारतरम् ॥

र्थ—मिथुनमास में स्वातीनक्षत्र में भूलोक में अवतार लिये हुए श्रीस्वामी भट्टनाथसूरिजी के लोकोत्तर वैभव को सारूप से वर्णन करता हूँ ॥

पाण्ड्यदेशमें श्रीविल्लिपुत्तूर नाम से सुप्रसिद्ध श्रीधन्वि-नव्यक्षेत्र में वैदिक ब्राह्मणोत्तमों के वंश में श्रीवटपत्रशायी भगवान के कटाक्षविशेष से मिथुन मास में स्वातीनक्षत्रमें एक महापुरुष प्रादुर्भूत हुए जो आगे श्रीविष्णुचित्त नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। जिस प्रकार तुलसी स्वभाव से ही विलक्षण सुगन्ध से परिपूर्ण होकर विराजमान रहती है, ठीक उसी प्रकार यह महानुभाव भी स्वभाव से ही अपार भगवद्भक्ति से विभूषित होते हुए भगवत्कैङ्कर्य में ही चित को लगाते हुए वृद्धि को प्राप्त होते भये ॥

इसी तरह सोचते हुए ये मान्यमहोदय इसी विचार में निमग्न हो गये कि किस प्रकार के कैङ्कर्य करने पर श्रीभगवान प्रसन्न होंगे। उसी क्षेत्र में प्रौढ़ पौराणिक विद्वान् श्रीविष्णुपुराण सुनाते हुए सभी सज्जनों के चित्त को श्रीभगवान के श्रीचरणों में लगाते हुए विराजते थे। एक समय ये महानुभाव भी भगवत्कथा को सुनने की इच्छा से उन्हीं की प्रवचन गोष्ठी में जाकर विराजमान हो गये। उस समय वे पौराणिकजी जिस श्लोक को लेकर विवरण करते थे, वह यह श्लोक है कि 'प्रसादपरमो नाथो मम गेहमुपागतो । धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह माल्योपजीवनः ।' अर्थ—कंस को मारने की इच्छा

ाले कि 'हे प्रभुवर परमपुरुष के श्रीचरणों में भक्तिभाव को बढ़ाना ही अपरिमित पारलौकिक व का कारण होता है। इस बात को सुनकर वे चक्रवर्ती पूछने लगे कि चार प्रकार के पुरुषार्थों । देने में समर्थ उस परतत्व को अमुक व्यक्ति के रूप में निर्धारित करने का कौनसा ाधन । तब पुरोहितजी बोले कि संपूर्ण शास्त्रों के मर्मों को जाननेवाले नाना देश के द्वानों को बुलाकर उनके द्वारा इस विषय का निर्धारण करना चहिये, दूसरे प्रकार से संभव हीं। इस बात को स्वीकार करते हुए महाराजा अधिक धन का एक संचिका में विद्या-शुल्क : रूपमें बांध कर सभामण्डपमें किसी उन्नत स्थान में लटकाकर चारों तरफ घोषणा करा दिये कि 'यहाँ ाकर वैदिक प्रमाणों का निरूपण कर ठीक तरह से परब्रह्म को जो विद्वान निर्धारित करेंगे, उनके गोद ं यह विद्याशुल्क की ग्रन्थि आपही पहुँच जायगी।' इस दिगन्त व्यापिनी घोषणा को सुनकर धुरन्धर वेदवृन्द नाना देशों से आकर परब्रह्म का निर्धारण करने के लिये शास्त्रार्थ संग्राम में उतारू होगये।

उस समय श्रीधन्विनव्यनगरक्षेत्र के अधिपति श्रीवटपत्रशायी भगवान् के मनमें यह अदम्य मनोरथ दिनों दिन बढ़ने लगा कि 'श्रीविष्णुचित्तसूरिजी के मुखसे वेदान्तों में वर्णित परतत्व को प्रकाशित कराकर चेतनगण उज्जीवनमार्ग में अग्रसर किये जायें।' यों मनोरथ करते हुए श्रीवटपत्रशायी भगवान श्रीविष्णुचित्तसूरि को स्वप्न में दर्शन देकर परमकृपा से अनुगृहीत करते हुए आज्ञा देने लगे कि 'स्वामिन्! आप आज ही मथुरापुरी जाकर पाण्डवराजा से एकत्रित की हुई पण्डित-सभामें पर-पक्षों को खंडितकर श्रीमन्नारायण भगवान के परत्व को वेदादि प्रमाणों से सुदृढ़ रूप से सिद्धान्त कराकर उस महाराजा से नियमित विद्याशुल्क को लेकर यहाँ आजायें।' श्रीविष्णुचित्तसूरिजी स्वप्न में यों प्रत्युत्तर दिये कि 'हे भगवन्! मैं तो शास्त्रविज्ञान के लवलेश से भी शून्य हूँ, केवल बागवान हूँ, धुरन्धर विद्वानों से ही साध्य इस काम को मैं कैसे कर सकता हूँ। खनित्र (खोदने का साधन हथियार) इत्यादि साधनों से साध्य किसी प्रबल काम में भी यदि आप नियुक्त करेंगे तो मैं सहर्ष उसे सिद्धकर सकता हूँ; किन्तु यह काम मेरे अधिकार से बाहर है। इस काम में मुझे श्रीमान् कैसे नियुक्त करते हैं, यह समझमें नहीं आता।' श्रीभगवान आज्ञा दिये कि 'इस विचार में आपको पड़ना उचित नहीं है, आप आज्ञामात्र के परतन्त्र होकर पधारें, काम को सम्हालना तो मेरा भार है।' यों आज्ञा देकर श्रीभगवान अन्तर्धान को प्राप्त हो गये।

अनन्तर श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी आश्चर्य परवश होते हुए शयन से उठे, श्रीभगवान की कृपा के विषय में धन्यवाद देने लगे, श्रीभगवान की आज्ञा को मानकर पाण्ड्य देशके राजाकी पण्डितसभा में पधार गये। आते हुए इन को देखकर पुरोहित समेत चक्रवर्ती सोचने लगे कि 'रूपमेवास्येतन्महिमानं व्याचष्टे' अर्थात् 'इनका यह दिव्यरूप ही अपार महिमा का व्याख्यान कर रहा है' इस श्रुति का अनुसन्धान करते हुए चक्रवर्ती श्रीस्वामीजी के दिव्यतेजःपुञ्ज से अपार वैभव को समझकर उठना

से मथुरापुरी में आये हुए मालाकार के घर पर जाकर पुष्पमाला को मांगते हुए श्रीबलदेवजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजी के समक्ष हाथ जोड़कर—पुष्पमालाओं को बेचकर जीवनयात्रा करनेवाले—श्रीमालाकार-जी विनती करने लगे कि 'हे प्रभो ! आप मुझ पर अनुग्रह करने की इच्छा से ही इस तुच्छ जीवके घर पर पधारे हुए हैं, मेरा अहो भाग्य है, मैं धन्य हो गया हूँ, खूब प्रेम से सेवा करूंगा।' इस श्लोक को लेकर कर्णामृतमयी इस भगवत्कथा को जोरदार शब्दों से कथा वाचकजी कहते थे। इस कथा को सुनने से आचार्य हर्ष से प्रफुल्लित-चित्त होते हुए श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी इस निश्चयपर पहुँच गये कि 'प्रतिदिन श्रीभगवान के श्रीचरणों में पुष्पमालाओं का समर्पण करना ही श्रीभगवन्मुखोल्लास को बढ़ानेवाला अनुपम कैङ्कर्य है।' अनन्तर आप मनोहर एक बगीचा लगाये, उसमें नानाप्रकार की लताओं को रोपे, उन लताओं को संवर्धनकर उनके सुगन्धित पुष्पों की माला बनाकर उस क्षेत्र के अधिपति श्रीवटपत्रशायी भगवान के श्रीचरणों में नित्य चढ़ाते हुए अपार आनन्द को प्राप्त हुए। दिन रात इस बगीचे को बढ़ाना ही इन के लिये नित्य कर्म हो गया। इस तरह आप अपने जीवन को ब्रह्मानन्दमय बनाते हुए कालयापन करते थे॥

इस समय दाक्षिणात्य में उत्पन्न अपार वैभवयुक्त वल्लभदेव नामक एक राजा दक्षिण मथुरापुरी में राज्यशासन करता था। उसका यह नियम था कि वह प्रतिदिन रात्रि में वेष बदलकर नगर-शोधन के लिये वीथी में घूमता था। एक दिन रात्रि में वीथी के किसी कोण में सोते हुए किसी एक पथिक को जगाकर महाराजा पूछने लगे कि 'आप कौन हो, कहाँ के हो, कहाँ जारहे हो'। पथिक कहने लगे कि 'मैं ब्राह्मण हूँ गङ्गास्नान को पूर्णकर के लौटकर आता हुआ श्रमशान्ति के लिये यहाँ सो गया हूँ।' सुनकर महाराजा बोले कि 'आप ब्राह्मण हैं, ब्राह्मण तो बड़े नीतिज्ञ होते हैं, आप जानते हों तो किसी एक नीति-श्लोक को कहने की कृपा करें।' इस तरह प्रार्थना किये जाने पर ब्राह्मण एक श्लोकरत्न को बोले, वह यह है—

'वर्षाधमष्टौ प्रयतेत मासान् निशार्धमर्धं दिवसं यतेत।
पार्लौकिकैहिकयोर्वयसा नवेन पत्र हेलाहि अन्यना च॥' (महा० भा०)

अर्थ—वर्षाकाल के चार माह में निर्वाह के योग्य चीजों के संग्रह के लिये आठ मास प्रयत्न करें। रात्रिमें निर्वाहार्थ आधे दिनमें परिश्रमकर कमा लेवें। बुढ़ापेमें निर्वाह के लिये जवानीमें संपादन करलें। परलोकमें श्रेय के लिये इस जन्ममें पुण्यपूंजी का संपादन करें। यह इस श्लोक का तात्पर्य है। संस्कृत के अभिज्ञ विदेशी के चक्रवर्ती इस श्लोक के अर्थ का बारम्बार मनन करते हुए यों सोचने लगे कि 'हम को ऐहलौकिक भोगों में किसी बात की कमी नहीं है। पारलौकिक श्रेय के लिये हमने अब तक कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। यह प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है, इस यत्न को किस तरह करना चाहिये।' मन में बढ़ती हुई इसी चिन्ता को दूसरे दिन द्राविड-भाषा में 'शेलनम्बि' नामधारी श्रीमान् ब्राह्मण अपने पुरोहित के समक्ष निवेदन किये। विवेक भगवद्भक्तों में अग्रसर वे पुरोहित जी

प्रणाम करना इत्यादि कई तरह के उपचारों से श्रीस्वामीजी के गौरव को बढ़ाते हुए सभामण्डप के मध्य में बड़े समारोह के साथ बड़े सिंहासन में श्रीस्वामीजी को विराजमान करा दिये। इस तरह अकारण बहुमान को देखकर नहीं सहते हुए अन्यथा मुक्त और सभी विद्वान लोग यों अभिद्वेष करने लगे कि अपार शास्त्र पाण्डित्य से अपरिचित इन लोगों का एक तरह से तिरस्कार कर इन को इस तरह से सम्मान करना किसी तरह से भी उचित नहीं है, ये जैसा जन्मे हैं वैसे के वैसे अब भी रहते हैं, बिलकुल पाण्डित्य को प्राप्त नहीं किये हैं इत्यादि। इन निन्दा वचनों को बिलकुल खयाल न करते हुए पुरोहितजी और चक्रवर्तीजी सिंहासन में दिव्यतेज के साथ विराजते हुए श्रीविष्णु चित्त स्वामीजी के सामने अञ्जलि हाथ जोड़कर विनय और आदर के साथ प्रार्थना करने लगे कि 'स्वामिन्! प्रमाणों के बल से आप परतत्व का निर्णय करने की कृपा करें'॥

इस तरह प्रार्थना किये जानेपर महात्मा श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी उस समय स्वप्न में देखे गये करुणानिधि सर्वेश्वर लक्ष्मीपति श्रीमन्नारायण भगवान के अनुग्रह को ही प्रबल अवलम्ब (सहारा) मानते हुए चित्त समाधि उनके श्रीचरणों के ध्यान में ही मानों डूब गये, तब श्री भगवान की कृपा से ही सर्वशास्त्रार्थों को करतलामलकवत् (हाथ में रहने वाले आमरा के फल की तरह) विशदरूप से जानगये, सर्वज्ञों में चक्रवर्ती होगये, अनन्तर श्रीस्वामीजी श्रुति स्मृति इतिहास पुराण इत्यादि समस्त प्रमाणग्रन्थों से असंख्य वचनों का वर्णन करते हुए युक्तियुक्त ढंग से आक्षेप समाधानों के साथ इन के अर्थों को भी सुस्पष्ट रूप से वर्णनकर परमत के सिद्धान्तों को जड़ के साथ उखाड़कर विशद मनोहर शैली से इस अकाट्य-सिद्धान्तों की स्थापना किये। वे सिद्धान्त ये हैं १—श्रीवैष्णवदर्शन ही परम प्रामाणिक है, २—श्रीमन्नारायण ही परदेवता हैं, ३—इन के श्रीचरणों में शरणागति ही परम हितकर है, इत्यादि। इस तरह सिद्धान्त स्थापना करके वहां की श्रोतृमण्डली को अपार आश्चर्य सम्भ्रमों के समुद्र में डुबा दिये। निन्दा करने वाले विद्वानों के मस्तक को भी नवा दिये।

अनन्तर चक्रवर्ती श्रीवल्लभदेवजी अपने पुरोहित के साथ श्रीविष्णुचित्त सूरिजी के—वाणी और मन से भी अगोचर होने में अशक्त—विद्वान-गरिमाकी खूब प्रशंसा करते हुए श्रीस्वामीजी के चरणारविन्दों के समीप साष्टांग प्रणाम करने लगे और देखने लगे कि पहिले अन्धे के शिर में स्थापित किया गया वह विद्या-गुरुत्व श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी के गोदपर उतरने में ही सिर रहा है। श्रीस्वामीजी भी श्रीभगवान की कृपा की महिमा को जगत में प्रदर्शित करनेवाले तथा दूसरे किसी को भी अलभ्य इस विद्यागुरुत्व को श्रीभगवान की आज्ञा के अनुसार स्वीकार किये। अनन्तर सभी विद्वद्गण श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी के चरणारविन्दों की धूलि को शिर में रखकर अपने को धन्य मानते हुए विनम्रता को धारण कर उनकर से खूब स्तुतिकरके कृतकृत्य और कृतार्थ होने लगे। अपार महिमा से सम्पन्न सूर्य की तरह देदीप्यमान श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी के विजय-यात्रा महोत्सव को बड़े समारोह

के साथ मनाने में उद्युक्त चक्रवर्ती इत्यादि सभी भक्तगण प्रार्थनाकर स्वामीजी को हाथी के ऊपर चढ़ाकर इन श्लोकों को गाते हुए विजयघोषणा करते हुए वीथी विहार कराने लगे। वे श्लोक ये हैं :—

जयति जयति विद्वान् भट्टनाथो महात्मा जयति जयति मान्यो विष्णुचित्तो महीयान।
जयति जयति धन्यो दिव्यसूरिर्गरीयान् जयति जयति तत्त्व-स्थापनाचार्यवर्यः॥ १॥

जयति जयति लक्ष्मीनाथकारुण्यपात्रं जयति जयति विद्वन्मस्तकन्यस्तपादः।
जयति जयति सूरिः सर्ववित्सार्वभौमो जयति जयति तत्त्वज्ञानिनामग्रगण्यः॥ २॥

अर्थ—विद्वान् महात्मा श्रीभट्टनाथ की जय हो जय हो, जगन्मान्य महान श्रीविष्णुचित्तजी की जय हो जय हो, गुरुराज धन्य दिव्यसूरिजी की जय हो जय हो, तत्त्व की स्थापना करनेवाले आचार्यों में श्रेष्ठ श्रीस्वामीजी की जय हो जय हो, श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान की करुणा के पात्र श्रीस्वामीजी की जय हो जय हो; प्रतिपक्षि विद्वानों के मस्तकों में चरणों को रखनेवाले श्रीस्वामीजी की जय हो जय हो, सर्वज्ञों के चक्रवर्ती श्रीसूरिजी की जय हो जय हो, तत्त्वज्ञानियों में अग्रेसर श्रीस्वामीजी की जयहो जय हो॥

तब से श्रीस्वामीजी का भट्टनाथ यों विरुद जगत में विशेष रूप से प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया। सूरिराज श्रीभट्टनाथ स्वामीजी जब श्रीचिन्ह काहली शंख भेरी इन सब के शब्दों से सुशोभित लोकोत्तर जययात्रा महोत्सव का अनुभव करते थे, तब पुत्र के महोत्सव को देखने में उत्सुक मातापिताओं की तरह दिव्यदम्पति अर्थात् श्रीलक्ष्मीजी और श्रीमन्नारायण भगवान ये दोनों श्रीगरुड़जी पर चढ़कर आगये और लोगों को परमाद्भुत अपना दर्शन दिये। आनन्द के साथ दिव्यचक्षु से श्रीभगवान का दर्शन करते हुए दिव्यसूरियों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी गर्वका अणुमात्र भी आश्रय न देते हुए परमभक्ति के सीमा में पहुँचकर श्री भगवान के ज्ञान शक्ति आदि गुणों को भूलकर सौन्दर्य सौकुमार्य और लावण्य इत्यादिगुणों का ही बारम्बार अनुसन्धान करते हुए प्रेम की वृद्धि के कारण सोचने लगेकि "हाय! हाय! काल का जहां बिलकुल प्रभाव नहीं पड़ता उस परमपदमें विराजने योग्य ये भगवान इस प्रकृतिमण्डल में आकर कैसे दर्शन देने लगे, जहाँ काल सब को नाश के पथपर ले जा रहा है। हाय, यदि इनको कोई आपत्ति आजायगी, तो क्या किया जायगा।" इस तरह अतिशंका करते हुए भयभीत होते हुए नित्यनिर्दोष सर्वकल्याणगुणों की खान श्रीदिव्यमंगल-विग्रह की नित्यश्री और नित्यमंगल को चाहते हुए उसी हाथी के कन्धे में बैठे हुए ही उस हाथी की घण्टियों को लेकर पल्लाण्डु पल्लाण्डु अर्थात जय विजयी भव यों आरम्भकर मंगलाशासन किये। श्रीभगवान भी कृतकृत्य और परम सन्तुष्ट होकर परमधाम को पधार गये।

अनन्तर श्रीभट्टनाथ स्वामीजी अपने चरणारविन्दों में प्रणामकर पड़े हुए पाण्ड्यदेश चक्रवर्ती को अतिशीतल कटाक्ष से अनुगृहीत कर वहांसे अपने स्थान में आकर राजसभा में प्राप्त हुए संतृप्त

श्रीधन्विनकव्य नगर में श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी के पुष्पोद्यानमें तुलसी के क्षेत्रमें भी श्रीजी ने कर्कटमास में परमपवित्र पूर्वफल्गुनी नक्षत्र में श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की पुत्री गोदाम्बाजी के रूपमें अवतार लिया। जिस प्रकार श्रीजनकजी अनुसन्धान करते थे कि 'जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता' अर्थात् मेरी बेटी जानकी जनकों के कुलमें कीर्ति को बढ़ायेगी, उसी प्रकार श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी भी अनुसंधान करते हुए "सन्तानहीन मुझ पर कृपाकर के परमकारुणिक श्रीभगवान् इस बेटी को दिये" यों मानते हुये उस बेटी को "गोदा" नाम रखकर इस अलभ्य लाभ से इतने सन्तोष को प्राप्त हुए, जैसा कहा जाता है कि "धन्वाध्वन्यस्य धारासलिलमिव धनं दुर्गतस्येव दृष्टिर्जात्यन्धस्येव पङ्गोः पदविहृतिरिव" अर्थात्, जैसे मरुभूमि में यात्रा करने वाले को धारा का पानी मिलने पर आनन्द होता है, जैसे दरिद्र को धन मिलने पर, अन्धे को नेत्रशक्ति प्राप्त होने पर, लंगड़े को चलने की शक्ति मिलने पर आनन्द आता है। उसी तरह श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी इस अलभ्य लाभ से आनन्दानुभव करते हुए लोकोत्तर प्रक्रिया से उस कन्या का पोषण करते हुए समय आने पर पञ्चसंस्कार देकर उस कन्या को परज्ञान परभक्ति विरक्ति इत्यादि संपत्ति से चमकने वाली लोकोत्तर कीर्तिवाली बना दिये॥

वह कन्या पिताजी को अपार आनन्द देती हुई बचपनसे ही अच्युत भगवान में च्युत न होने वाली भक्ति को धारण करती हुई श्रीभगवान के प्रति पत्नी-भाव को पक्के अध्यवसाय से बढ़ाती हुई सुस्पष्ट यों कहती थी कि "तमन्तरेण नैवान्यं मनसापि पतिं वृणे" अर्थात् 'उस श्रीभगवान को छोड़कर मैं और किसी को भी पतिके रूपमें मन में कल्पना तक नहीं कर सकती।' यों डङ्के की चोटमें कहती हुई श्रीविष्णुभगवान के अपार वैभव के विषयमें चिन्तवन करती हुई, बोलती हुई और विभ्रमती हुई बढ़ने लगी। पिता श्रीमान् विष्णुचित्त स्वामीजी हररोज श्रीवटपत्रशायी भगवान को समर्पण करने के लिये पुष्पमाला को तैयार कर पोटली में रखकर दूसरे काममें लग जाते थे। उस समय यह श्रीगोदाम्बाजी दिव्य-वस्त्र पहिनकर दिव्यभूषणों को धारण कर उसी पुष्पमाला को रहस्य में अपने केशों में धारण करती हुई अपने विषयमें परीक्षा लेती थीं कि 'मैं श्रीभगवान के योग्य मनोहर की हूँ या नहीं?' यों परीक्षाकर श्रीपिताजी के आनेके पहिले ही उस पुष्पमाला को केशोंसे निकालकर उसी पोटली में उसी तरह रख दिया करती थीं। यह हररोज इनका आचरण था। इस वृत्तान्त को न जानते हुए पिताजी भी उन मालाओं को श्रीभगवान को समर्पण करते थे। पहिले समर्पित मालाओं की अपेक्षा अधिक सुगन्ध-युक्त इन मालाओं को धारण कर श्रीभगवान भी अपार आनन्द को प्राप्त होते थे।

इस रीति से कई दिन निकल जानेपर एक दिन पुष्पमाला को पोटली में रखकर बाहर गये हुए श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी झट ही लौट आए, बेटी के केशों में रखी हुई उस माला को देखकर

तुल्य-तुल्य को श्रीवटपत्रशायि भगवान के मन्दिर के गोपुर को बनाने के कैङ्कर्य में लगाकर पहिले को तरह पुष्पकैङ्कर्य में लगकर वेदान्तशास्त्र के प्रवचन से शिष्यमण्डली को उज्जीवित करते हुए यों चमकने लगे कि जिनका कीर्तिसंकाश दिगन्तों तक फैल गया ॥

श्रीमद्भाष स्वामीजी से निर्मित दिव्यप्रबन्ध दो हैं, जिन की महिमा सर्वत्र प्रसिद्ध होगयी है। उनमें तिरुप्पल्लाण्डु नामक एक दिव्य प्रबन्ध है, जिसमें श्रीभगवानके मंगल शासन का वर्णन है, जिसमें १२ गाथायें हैं। दूसरा दिव्यप्रबन्ध पेरियाल्वार-तिरुमोलि अर्थात् श्रीविष्णुचित्तसूक्त कहलाता है, जिसमें ४६३ गाथायें हैं। पूर्वाचार्यगण इन दोनों दिव्यप्रबन्धों को चार हजार दिव्यप्रबन्धोंमें से पहिले हजारमें रखते हैं। इन प्रबन्धों से श्रीकृष्ण अवतार के गुण और लीलाओं के विषयमें श्रीस्वामीजी का विलक्षण सिद्धान्त अनुभव व्यक्त होता है। भट्टनाथ और विष्णुचित्त इन दोनों नामों को धारण करते हुए भी ये स्वामीजी पेरियाल्वार अर्थात् महादिव्यसूरि इस नाम से ही अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। यों प्रसिद्ध होने के कारण को बतलाते हुए श्रीवरवरमुनि स्वामीजी उपदेशरत्नमालामें निरूपण करते हैं कि श्रीभगवान को मंगलाशासन करने में दूसरे दिव्यसूरियों से भी आपका अभिनिवेश अधिक था, इसलिये 'महादिव्यसूरि' इस विरुद को प्राप्त हो गये। श्रीवेदान्ताचार्य स्वामीजी गोदास्तुति में कहते हैं कि अपनी बेटी के केशों में धारण की गई पुष्पमाला को अब आप श्रीभगवान की आज्ञा से श्रीभगवान को अर्पण किये थे तब से लेकर महादिव्यसूरि कहलाये। यह कथा श्रीगोदाम्बाजी के वैभव प्रकरण में लिखी जायगी, पाठक वहाँ देखलें ॥

इति श्रीमद्भृनाथार्यवैभवं हृदि बिभ्रताम् । वेदवेदान्तसर्वस्वं हस्तामलकतामियात् ॥

इस तरह के श्रीमद्भाष स्वामीजी के वैभव को हृदयमें धारण करने वाले महानुभावों को वेदवेदान्तों का सारार्थ हस्तगत आमले के फल की तरह सुस्पष्ट दिखाई देगा ॥

इति श्रीमद्भृनाथहरिजी का वैभव समाप्त ॥

॥ श्रीगोदाम्बाजी का वैभव ॥

कलेः प्रथमसन्ध्यायां विष्णुचित्तमहामनाः । उदितायाः श्रियो देव्या गोदायाः कथये कथाम् ।

अर्थ—कलियुगमें पूर्वसन्ध्यांशमें श्रीविष्णुचित्त की पुत्री गोदा के रूपमें अवतार हुई श्रीदेवी की कथा को कहता हूँ ॥

जिस तरह त्रेतायुग में मिथिलापुरी में श्रीजनकमहाराजी की यज्ञशाला भूमि में श्रीजानकी के रूप में आद्या ने अवतार लिया था, उसी तरह इस कलियुग में भी श्रीरङ्गक्षेत्र के अन्त

"हाय, यह क्या अपचार हो रहा है" यों दुःख पाते हुए क्रोधमें आकर बेटी से कहने लगे कि हे साध्वि! बेटी! इस तरह का काम करना आपको उचित नहीं, जिस कामको मनसे भी सोचना उचित नहीं, उस काम को आप कैसे करने भी लग गयीं, क्या हरगोज इस तरह ही किया करती हो हाय, हमको भी तो आपने अपचार के गड्ढे में गिरा दिया, हम को आप असह्य दुःख पहुँच दी। यों कहते हुए शिक्षा दिये कि 'आगे आप ऐसा कभी न किया करें।' यों बेटी को शिक्षा देके श्रीस्वामीजी उस दिन श्रीभगवान की बेटी की उच्छिष्ट माला का समर्पण न कर कैङ्कर्यमें विच्छेद होने से दुःखित होने के कारण चुपचाप रहे आये।

इसी रात्रि में वही श्रीवटपत्रशायी भगवान् स्वप्न में श्रीस्वामीजी को दर्शन देकर पूछने लगे कि 'क्यों, आपने आज हम को माला नहीं दी?' उत्तर में श्रीस्वामीजी कहने लगे कि पुत्री के अपचार के कारण ही माला नहीं दी गयी। इस विज्ञापन को सुनकर श्रीभगवान आदर के साथ आज्ञा दिये कि 'अजी, बहुत दिनों से श्रीगोदाम्बाजी से उपभोग की गई उच्छिष्ट माला को धारण करने से मेरे शिर में सुगन्ध और मन में आनन्द अधिक बढ़ गये हैं, श्रीगोदाम्बाजी की उच्छिष्ट माला को धारण कर आनन्द मनानेवाले हमको उनकी उच्छिष्ट माला का ही हरगोज और समर्पण किया करें, यह मेरी आज्ञा है।' इस प्रकार आज्ञा देकर श्रीभगवान अन्तर्धान को प्राप्त हो गये। अनन्तर शयन से उठे हुए श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी अपनी पुत्री श्रीगोदा को अपने की स्वामिनी श्रीविष्णुचित्त श्रीजी के अवतार समझते हुए उस दिन से लेकर श्रीभगवान की आज्ञा के अनुसार श्रीगोदाम्बाजी के उच्छिष्टमाला को ही सदाकाल में श्रीभगवान को समर्पण करते हुए श्री भगवान के अपार अनुग्रह को प्राप्त करने लगे। इस कारण से ही अपनी बेटी का दूसरा नाम रक्खे कि 'शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार' अर्थात् 'श्रीउच्छिष्टमालादात्री देवी' अर्थात् 'अपनी उच्छिष्टमाला देनेवाली देवी।' यह चरित्र आज भी उस दिव्य-देश के अनुष्ठान में दिखाई देता है। प्रतिदिन सुबह श्रीगोदाम्बाजी के मन्दिर से उन्हीं से धारित की गयी माला बाजा बाजा के साथ श्रीभगवान के मन्दिर को लायी जाती है और श्रीभगवान के श्रीविग्रह में पहनाई जाती है॥

ज्ञान, भक्ति, वैराग्यों के साथ श्रीगोदाम्बाजी की अवस्था बढ़ने लगी। अकेले श्रीभगवान के प्रति ही इनका प्रेम भी बढ़ने लगा। जिस प्रकार श्रीरामायण में श्रीसीताजी अनसूयाजी से कही थीं कि 'पतिसंयोगमतुलं यथो हृष्टवती मे पिता। विलप्तन्तमगाधं पारं नावमासाद्यवो यथा' अर्थात् पति के साथ विवाह करने के योग मेरी अवस्था को देखकर मेरे पिता श्रीजनकजी विलापसमुद्र में पड़कर उस का पार नहीं पा सके जैसे नौकारोहण पुरुष समुद्र में पड़कर पार नहीं पाता है।' उसी प्रकार श्रीगोदाम्बाजी के पिता श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी भी विवाह की चिन्ता के समुद्र में डूबने लगे। श्रीगोदाम्बाजी इसी अध्यवसाय में रहती रहीं कि श्रीभगवान को छोड़कर दूसरे किसी पुरुष को

मनसे कल्पना तक भी न करूंगी। पिताजी भी अन्त में श्रीभगवान अपनी वस्तुको आप ही स्वीकार करेंगे, यो सोचते हुए निश्चिन्त रहने लगे। श्रीगोदाम्बाजी भी अपने प्रेमप्रवाह के विकास के रूपमें दो दिव्यप्रबन्धों का प्रादुर्भाव करके श्रीभगवान के अकाट्य अनुग्रह का पात्र बनने के लिये चेष्टा की, वे दोनों दिव्यप्रबन्ध 'तिरुप्पावै' और 'नाचियार तिरुमोलि' नाम से प्रसिद्ध हैं॥

इस तरह दूसरे किसी में भी न दिखाई देनेवाले स्थायी लोकोत्तर अनुराग का आविष्कार करने वाली बेटी श्रीगोदाजी से एक समय उन के पिता श्रीभट्टनाथ स्वामीजी पूछे कि हे भद्रे ! आप कहती हैं कि श्रीभगवान को ही मैं पति के रूप में वरण करूंगी, तो एक सौ आठ दिव्यदेशों के अधिपति भगवानों में से किन को पति के रूपमें वरण करने की आप की इच्छा है। श्रीगोदाम्बाजी ने उत्तर में कहा कि सभी दिव्यदेशों के भगवानों के वैभव को यदि आप विस्तार से कहें, तब अभिमत वरको मैं बता सकी हूँ, इसलिये आप श्रीभगवानों के वैभव को बताने की कृपा करें। इस प्रकार श्रीगोदाम्बाजी से प्रार्थना किये जानेपर सूरि श्रीस्वामीजी क्रमसे सभी भगवानों के वैभव का ठीक तरह से वर्णन करते हुए श्रीगोदाम्बा जी के हाव-भाव चेष्टाओं से धीरे धीरे जानने लगे कि श्रीगोदाम्बाजी का अनुराग अर्चावतारूपी भगवानों में से सर्वाङ्गसुन्दर श्रीरंगनाथ भगवान में और विभवावतारूपी भगवानों में से आनन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रजी में बढ़ता जा रहा है। जान कर श्रीस्वामीजी चिन्ता-मग्न हो गये कि 'हाय, इस बेटी का मनोरथ कैसे सफल होगा ? अर्चावतारूपी श्रीरङ्गनाथ भगवान अपने हाथ से इस के हाथ को कैसे ग्रहण करेंगे ? अनन्तर किसी एक दिन रात में स्वप्न में श्रीरङ्गनाथ भगवान श्रीस्वामीजी को दर्शन देकर आज्ञा दिये कि 'स्वामिन् ! आप अपनी बेटी को श्रीरङ्गधाम में लाइये, आप की बेटी को मैं बड़े प्रेमसे स्वीकार करूंगा, बिना कालु नष्ट किये शीघ्र ही अपनी बेटी को श्रीरंग लाने की चेष्टा करें।' यों आज्ञा देकर श्रीरंगनाथ भगवान अन्तर्धान होगये। आश्चर्यसागर में डूबे हुए श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी अपार आनन्द को प्राप्त हुए। इसी तरह ही श्रीरंगनाथ भगवान अपने मन्दिर के स्थानिक इत्यादि परिजनों को स्वप्न में दर्शन देकर आज्ञा दिये कि तुम सभी लोग समस्त मङ्गल-वाद्यों के साथ छत्र चामर इत्यादि परिच्छदों को हाथ में लेकर मेरी नव-रत्न-मयी शिबिका को श्रीविष्णुचित्त नगर में ले जाकर उसमें श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की बेटी श्रीगोदाम्बाजी को बिठलाकर लेआओ। श्रीभगवान की इस आज्ञा को शिरसे मानते हुए सभी परिजन तुरन्त ही वहां से प्रस्थानकर श्रीपत्रि-नव्य-नगरी में पहुँचकर श्रीभट्टनाथ स्वामीजी की सन्निधि में इस श्रीभगवदाज्ञा को सुनाये। श्रीरङ्गनाथ भगवान की इस आज्ञाको सुनकर श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी मानों आनन्दसागर में डूब गये। अनन्तर श्रीवटपत्रशायी भगवान की आज्ञा पाकर श्रीगोदाम्बाजी से सभी वृत्तान्त कहे, सुनकर श्रीगोदाम्बाजी को जो आनन्द हुआ, उसे श्रीशेषजी भी वाणी से वर्णन नहीं कर सके। अस्तु, अनन्तर श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी और श्रीरंगनिवासी परिजन सभी श्रीगोदाम्बाजी को शिबिका में बिठलाकर ले जाने की चेष्टा करने लगे॥

कार्यांसूत्र के समान इस शुभ बातों को सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट होते हुए राजा श्रीवल्लभदेवजी इस विवाहमहोत्सव को खुद अनुभव कर के धन्य बनने के लिये तथा अपनी शक्ति के अनुसार सेवा करके कृतार्थ होने के लिये मनोरथ करते हुए तमाम अपने भृत्यों को पूरी तय्यारियों का परिष्कार करने की आज्ञा देकर रथ हाथी घोड़े इत्यादि चतुरंग सैन्य को लेकर श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हो गये। वे कृतमाल श्रीवन्दि-नन्दन-कानन से लेकर श्रीरंग पर्यन्त सम्पूर्ण मार्ग को जलसे सींचना, मंडपवली बनाना, तोरणों से अलंकृत करना, सुपारी और केलों के स्तंभों को बांधना इत्यादि परिष्कारों से अत्यन्त शोभायुक्त बनाये॥

श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी अपनी बेटी श्रीगोदा को श्रीरंगनाथ भगवान से भेजी गई रत्नमय-शिविका में बिठलाकर मंगल-वाद्य-घोषों के साथ सपरिवार श्रीरंगनगरी में पहुँचकर श्रीभगवान के दिव्यमन्दिरके आगे विराजमान दिव्यवस्त्र में श्रीगोदाम्बाजी को उतारे। शिविका से उतरकर श्रीगोदाम्बाजी श्रीरंगनाथ भगवान का मुख ही से अच्छी तरह दर्शनकर आनन्दसमुद्र में डूबे हुए मनको सँभालती हुई नूपुरादि भूषणों का मंजुल ध्वनिके साथ हंसी की तरह धीरे धीरे पदार्पण करती हुई श्रीशेष-शय्या पर पड़ कर अपनी कृपा कटाक्षों से तमाम जिवों को बचाने करनेवाले विट-सार्वभौम श्रीरंगनाथ भगवान के वक्षःस्थल में श्रीदेवी की तरह स्थान पाकर वहीं नित्य विराजती हुई अपार शान्तिमय आनन्द को प्राप्त हुई॥

'अहो भाग्य, अहो भाग्य' की अनुसन्धान करते हुए श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी हर्ष और विषाद के वशवर्ती हो गये। अनन्तर श्रीरंगनाथ भगवान श्रीस्वामीजी को अपने पास बुलाकर आदर के साथ कहे कि 'आज से आप भी क्षीरसमुद्र की तरह मेरे रक्षक होंगे।' अनन्तर तीर्थ और माला इत्यादि प्रसाद प्रदान करके श्रीस्वामीजी को भगवान ने सम्मानित किया। अनन्तर श्रीवटपत्रशायी भगवान के कैङ्कर्य करने के लिये श्रीरंगनाथ भगवान की आज्ञा लेकर श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी श्रीवल्लभदेव राजा के साथ श्रीवन्दि-नन्दन-नगरी पर वापस पधार गये॥

इत्थं गोदावैभवमनुक्षणनिगं हृदाऽवधारयताम्।
अहरहरभिवृद्धिमियुः कल्याणानां परम्परा भवने॥

अर्थ—इस तरह श्रीगोदाम्बाजी के अद्भुत वैभव को सर्वदा मनसे चिन्तन करने वाले महानुभावों के घर में मंगलों की परम्परा हर रोज वृद्धि को प्राप्त होगी॥

इति श्रीगोदा देवी का वैभव समाप्त हुआ॥

॥ ६—श्रीभक्तांघ्रिरेणु सूरिजी का प्रभाव ॥

धनुर्मासि धनिष्ठोडुन्यवतीर्णस्य भूतले । भक्तांघ्रिरेणोर्महिमा कथ्यते भक्तमुक्तये ॥

अर्थ—धनुर्मास में धनिष्ठा नक्षत्र में भूलोक में अवतार लिए हुए श्रीभक्तांघ्रिरेणु सूरिजी की महिमा भक्तों के मोक्ष के लिये कही जाती है ॥

चोल देश में पुल्लम्भूदंगुडि नामके दिव्यदेश के समीप मण्डंगुडि नामके पवित्र प्रसिद्ध ग्राम में शुभ-ज्येष्ठा नक्षत्र में आगे शिखा रखनेवाले वैदिक ब्राह्मणोत्तमों के वंश में एक महापुरुष प्रादुर्भूत हुए। श्रीभगवान के कटाक्ष से उत्पन्न उस दिव्यशिशु का पिता ने 'विप्रनारायण' नाम रक्खे। वह बालक समय समय में चौल उपनयन इत्यादि संस्कारों से संस्कृत हुआ, अंग और उपांगों के साथ सम्पूर्ण वेदों का अध्ययनकर वह विद्यार्थी अत्यन्त ज्ञान सम्पन्न हुआ। अनन्तर वे महात्मा होकर शुद्धसत्त्व के एक मात्र निधि की तरह दीखने लगे, ज्ञान और वैराग्य की सीमा पर पहुँच गये, चारों तरफ आप का विपुल कीर्ति फैलने लगी। रहस्यत्रय के अर्थों में आप की बहुत निष्ठा थी, आप भगवद्-भागवत और आचार्यों के कैङ्कर्य को ही परम श्रेष्ठ मानते थे। गृहस्थाश्रम को लेने में आपकी बिलकुल इच्छा नहीं थी, आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनकर रहने को ही पसन्द किये। अनन्तर श्रीरंगनगरी पर आये, श्रीआदिशेषजी पर शयन किये हुए श्रीरंगनाथ भगवान का खूब दर्शन किये। श्रीभगवान के लोकोत्तर सौन्दर्य आदि गुणों से आपका मन आकृष्ट हो गया। आप वहीं नित्यवास करने के लिये संकल्प करके श्रीविष्णुचित्तसूरि की तरह श्रीभगवान का पुष्पकैङ्कर्य करना चाहते थे, एक मनोहर बगीचा लगाये, तरह तरह की लताओं का संवर्धन करने लगे, वहीं उत्पन्न तुलसी पुष्पमाला इत्यादि का समर्पण कर आप श्रीभगवान के प्रसाद का पात्र बनने लगे। अपने आश्रम के अनुसार भिक्षावृत्ति से अपनी देहयात्रा को निभाते थे, आप के श्रेष्ठ अनुष्ठान को देखकर सभी जनता प्रशंसा करने लगी, इस तरह आप श्रीभगवान को और भक्त भागवतों को अपार आनन्द पहुँचाते हुए श्रीरंग में विराजते थे ॥

इस प्रकार इस भक्त श्रेष्ठ का पावन समय बीतने लगा। किसी दिन देवदेवी नाम की वेश्या—जो कि भगवान् के मन्दिर के पास ही रहा करती थी—अपनी सखियों के साथ निचुलापुरी जाकर चोल नरेश के भवन में अपने नृत्य गीत आदि का बड़ा सुन्दर प्रदर्शन कराया। राजाको मोहित कर लिया। उससे बड़ी सम्पत्ति और सम्मान को प्राप्त करके बड़े गर्व के साथ लौटते समय मार्ग में इस विप्रनारायण के मनोहर उद्यान को देखा। वह इतना रमणीय था कि वेश्या का हृदय उसकी ओर आकृष्ट हो गया। उस उपवन के सुमनोहर सन्निवेशों को देखकर उसके मनमें यह कामना हुई कि मैं हमेशा यहीं रहूँ। स्वतन्त्रता के साथ अच्छी प्रकार से वहाँ रहने के लिए उसने

मुझ अनाथाको अपना कृपापात्र बनाकर अनुगृहीत करें। मैं आपकी पुष्पवाटिका की रखवाली करूंगी, क्यारियां बनाऊंगी, पानी सींचूंगी, फूल उतारूंगी और भगवान के लिए माला बनाऊंगी। आप यथा-योग्य सभी कार्यों में इस दासी को निःसंकोच नियुक्त कर सकते हैं। यह दासी आपकी आज्ञा को शिरसा वहन करेगी, आप जो जो कार्य करने की आज्ञा देंगे, दासी उन सभी कार्यों को अच्छी प्रकारसे सम्पन्न करने के लिए तैयार है और उत्कण्ठित है। आप इस दासी को अवश्यमेव अनुगृहीत करें। हे महानुभाव ! आप दासी के विषय में अन्य किसी प्रकार की आशंका न करें।'

इन प्रार्थना पूर्ण वचनों को सुनकर श्रीविप्रनारायण जी ने वेश्या के कपट पूर्ण हृदय को नहीं समझ पाया, अपनी महज सरलता के कारण उसकी बात को यथार्थ ही समझा, और 'इसके यहां रहने से वाटिका के कैङ्कर्य में सुविधा होगी' इस विचार से उसकी प्रार्थना को 'तथास्तु' कह कर स्वीकार करके वाटिका के कार्य में उसे नियुक्त कर दिया। वह वेश्या भी बड़ी तत्परता के साथ सब प्रकार के समुचित कैङ्कर्य करने लगी, इन श्रीस्वामी जी के भोजन से जो कुछ थोड़ा-बहुत बच जाता था, उसी को खाकर सन्तुष्ट रहती थी, बड़ी सादगी के साथ जीवन यापन करती हुई स्वामी जी के प्रति पूर्ण श्रद्धा भक्ति का प्रदर्शन किया, वाटिका को खूब सजाया, खूब समृद्ध किया, जिससे स्वामीजी की पूर्ण विश्वास पात्र बन गई।

इस प्रकार कई मास बीत गये, देवदेवी बाहर ही वृक्षों के नीचे रहा करती थी। एक दिन की बात है, बड़े जोर की वर्षा हो रही थी, अपनी पर्णशाला के भीतर बैठे हुए श्रीविप्रनारायण जी ने देखा कि बाहर वर्षा के आघात से देवदेवी खूब पीड़ित होकर व्याकुल हो रही है। एक तो वे स्वभाव से ही बड़े दयालु थे, दूसरे आश्रित को पीड़ित देखकर उन्हें बड़ी दया हुई, उन्होंने उसे पर्णशाला के भीतर आने की आज्ञा दे दी। बस, वही क्षण मानों भगवान की उस माया का विजय-क्षण हो गया, जिसके लिए उनकी घोषणा है कि "मम माया दुरत्यया"="मेरी माया का अतिक्रमण करना कठिन है।" श्रीविप्रनारायणजी की आज्ञानुसार वह पर्णशाला के भीतर चली गई, अपनी सरस, ललित, अमृतमयी वाणी से विप्रनारायण को अपने अधीन कर लिया, उनकी विरक्तता को भ्रष्ट कर दिया। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके कुछ दिन तक उनके साथ रही, प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने पर जब उसने सोचा कि इस दरिद्र के पास रहने से कोई लाभ नहीं है, तब वह उनसे विरक्त होकर अपने घर चली गई। ये महात्मा उस वेश्या के वियोग से दुःखित होकर, उसके घर गए, किन्तु घरके भीतर वे नहीं जाने पाये, द्वार में ही रोक दिए गये, द्वार पर ही व्याकुल होकर बेचारे पड़े रहे।

श्रीरंगराज-महिषी लक्ष्मीजी ने विप्रनारायण की इस दुर्गति को देखकर अपने प्राणनाथ श्रीरंगनाथ भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहा कि 'हे प्रिय ! वल्लभ ! बहुत दिनों तक विप्रनारायण ने हम लोगों के अनेकों अनुपम कैङ्कर्यों को किया है; किन्तु दुःख की बात है कि वह महात्मा वेश्या के

उस वाटिका के स्वामी को अपने अधीन करना चाहा। इसी विचार से विलास गति के साथ वह यत्र इतस्ततः घूमने लगी। उसने वाटिका के किसी कोने में तेजस्वी महापुरुष को देखा। वे क्यारियों को सुधार कर पानी लगाने में व्यस्त थे। उनके शरीर में द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक शोभित हो रहे थे, उनके वक्षःस्थल में तुलसी और रत्नहार की माला विराजमान थी। उनका शरीर तेजःपुञ्ज के समान देदीप्यमान था, वे ही हैं इस मनोहारिणी वाटिका के स्वामी श्रीविप्रनारायण जी। सौन्दर्यमदसे उन्मत्त वह वेश्या उन्हें देखते ही उनके पास गई, उन्हें मोहित करने के विचार से अपने शरीर की सुन्दरता को दिखाकर अनेक प्रकार के हाव भाव कटाक्ष करने लगी। किन्तु वे श्रीविप्रनारायण बड़े जितेन्द्रिय थे। इसलिए उनपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उन्होंने एक तृणके समान ही इसकी उपेक्षा कर दी इतने पर भी उस वेश्या की उत्कण्ठा कम नहीं हुई। उसने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि 'किसी न किसी प्रकार इसे अपने वश में ही करके छोड़ूंगी।' किन्तु वे महापुरुष तो मनसा वाचा कर्मणा भगवत्कैङ्कर्य में ही निमग्न रहा करते थे। दूसरे विषयों की ओर उनका मन ही नहीं जाता था

देवदेवी ने जाते करते हुए अपनी सखी से कहा कि मैं अपने असीम सौन्दर्य के बलसे बड़े बड़े महात्माओं को भी क्षणमात्र में ही अपने वश में कर लेती हूँ; किन्तु इस महात्मा ने मुझे एक तृण के बराबर भी नहीं समझा, मेरा तिरस्कार कर दिया, वास्तव में यह बड़े आश्चर्य की बात है क्या यह उन्मत्त है? अथवा नपुंसक है?' सखी ने उत्तर दिया कि 'ये महात्मा बड़े विरक्त हैं इनका चित्त केवल भगवान के कैङ्कर्य में ही निमग्न रहता है, प्राकृत विषयों की ओर तो इनका चित्त कभी जाता ही नहीं, इसलिए आप सैकड़ों प्रयत्नों से भी इन्हें अपने वशीभूत नहीं कर सकती, यदि आप इन्हें अपने अधीन करलें तो मैं छःमहीने आपकी सेवकाई करूंगी।' इस प्रण को सुनकर देवदेवी ने भी प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैं इन्हें अपने अधीन न कर सकूंगी तो एक वर्ष तक तुम्हारी दासी बनकर रहूँगी।'

इसके बाद उसने अपने सम्पूर्ण आभूषण उतार कर सखियों को दे दिया, वेणी आदि सब अङ्गों को अपने अपने पर भेज दिया, स्वयं अकेली गेरुआ वस्त्र धारण करके श्रीविप्रनारायण जी के पास गई और उनके चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने पूछा तुम कौन हो? यहाँ क्यों आई? उत्तर में वेश्या ने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता के साथ प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! मैंने पूर्वजन्म में बड़े पाप किए थे, जिनके फलस्वरूप इस जन्ममें वेश्यावंश में उत्पन्न हुई हूँ। उस दुष्कर्म के अनुरूप वेश्या-वृत्ति में ढोकला चलाने के लिए मेरी माता मुझे बाध्य करती है, किन्तु मुझे वेश्या-वृत्ति से घृणा है। इसलिए अपने सभी बन्धु बान्धवों को छोड़कर मैं आपके शरण में आई हूँ। आप पर भागवतों में श्रेष्ठ हैं, पूज्य हैं। मेरी यही अभिलाषा है कि आपके पावन कमलों की सन्निधि में रहकर भगवदनुरूप कैङ्कर्य करते अपना अवशीवन (मोक्ष) प्राप्त करूं। हे प्रभो! आप करुणासागर हैं

ज्ञान में फँस कर अपनी साधु-वृत्ति को छोड़ दिया, कुत्ते की तरह उस वेश्या के पीछे लगा रहना है उसके द्वारा बारम्बार अत्यधिक तिरस्कृत होने पर भी उसका पीछा नहीं छोड़ता, आपलोग आश्चर्य से चकित होकर उस वेश्या के गृह द्वार पर पड़ा हुआ है। हाय! हाय! आपकी यह कैसी विचित्र लीला है?, हा! हन्त! परम भक्तों को भी आप कथा माया से इस प्रकार बाँध हैं?, बस, बस! बस, इतने दिनों तक जो आपने इस माया के प्रपञ्च में उसे फँसा रखा, यही बहु है। अब इस माया के प्रपञ्च को बन्द कीजिए और उस महात्मा को शीघ्र ही अपना कृपा पात्र बनाकर पहिले ही की तरह अपने नित्य कैङ्कर्यों में संलग्न करने की कृपा कीजिए।' भगवान ने अपने दिव्य महिषी की इस प्रार्थना को सुनकर मन्द मन्द मुसकाते हुए "तथास्तु"="ऐसा ही होगा" कह कर शीघ्र ही एक विचित्र घटना को उत्पन्न किया।

स्वयं भगवान् ने ही मनुष्य का रूप धारण किया, अपने दिव्य मन्दिर के पात्रों में से किसी एक कीमती स्वर्णकलश को लेकर देवदेवी नामक वेश्या के घर आकर पुकारा कि 'किवाड़ खोलो' वेश्या ने पूछा कि तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? कहाँ के हो? यहाँ क्यों आये हो?, मनुष्य रूप धारी भगवान ने कहा कि 'मेरा नाम है रङ्गराजविदास, श्रीविमलनारायण जी ने भेजा है, तुम्हारे लिए उपहार लेकर आया हूँ, शीघ्र किवाड़ खोलो।' वेश्या ने आकर किवाड़ खोला और कहा कि क्या चीज है?' श्रीरङ्गराजविदास ने उसे स्वर्ण-कलश दिया और कहा कि 'श्रीविमलनारायण जी ने आपके लिये यह उपायन भेजा है।' यह सुनकर बड़े आदर के साथ वेश्या ने पूछा कि 'इस समय वे कहाँ हैं?' श्रीरङ्गराजविदास ने उत्तर दिया कि 'इस समय वे घर में ही हैं।' 'आप आकर उनके यहाँ भेज दीजियेगा, ऐसा कहकर वह वेश्या स्वर्ण कलश लेकर भीतर चली गई। भक्त सुलभ मानव-रूप धारी भगवान् ने विमलनारायण के पास आकर कहा कि 'देवदेवी ने आपको बुलाया है' इसके बाद भगवान विलीन हो गए। वेश्या के बुलाने से विमलनारायण आनन्द विभोर हो गये बड़ी उतावली और शीघ्रता के साथ आकर वेश्या के घर में प्रविष्ट हो गए।

रात्रि बीत गई। प्रातःकाल जब श्रीरङ्गनाथ भगवान् का मन्दिर खोला गया, तब हल्ला मचा कि "एक स्वर्णकलश की चोरी हो गई।' चोरी का पता नहीं चला, अन्त में मन्दिर के अधिकारियों ने चोरी का पता लगाने के लिए राजद्वार में निवेदन किया। राजदूतों ने जल्दी ही मन्दिर आकर वहाँ के पुजारी और परिचारक आदि लोगों को अनेक तरह कर सूद परेशान किया। जब यह सिद्ध हो गया कि पुजारी और परिचारक आदि लोग सर्वथा निर्दोष हैं, तब बाहरी स्थानों में जहाँ तहाँ पता लगाने के लिए गुप्तचरों को नियुक्त किया गया। उन लोगों ने देवदेवी की सेविका के मुख से जब यह सुना कि 'चुराया गया स्वर्णकलश देवदेवी के घर पहुँचा है,' तब वे लोग वहाँ जाकर स्वर्णकलश को प्राप्त करके उस घर के सभी लोगों को अपराधी के रूप में राजा के सामने उपस्थित किया।

राजा ने देवदेवी से पूछा कि भगवान् के इस पात्र को तुमने क्यों चुराया? वह बोली कि 'हे प्रभो! मैं नहीं जानती कि यह किसका पात्र है? विप्रनारायण ने उपहार भेजा है, ऐसा कहते हुए रंगशायिदास नाम के किसी दूत ने लाकर मेरे हाथ में दिया है, बस इतना ही मैं जानती हूँ, इससे अधिक कुछ नहीं जानती।' तब राजा ने विप्रनारायण से कहा कि वास्तव में तुम्हीं चोर हो। उसने भी आंसू बहाते हुए कहा कि 'मैं कुछ भी नहीं जानता, मैं बड़ा निर्धन हूँ, मेरे कोई भी दूत नहीं है।' राजा ने यह सब सुनकर विचार किया, वेश्या को उचित दण्ड दिया और समुचित दण्ड देने के विचार से विप्रनारायण को जेल खाने में बन्द कर दिया।

रात्रि में श्रीरंगलक्ष्मी ने भगवान् से प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! विप्रनारायण को चोरी का विषय न बनाया जाय, उसे केवल कृपापात्र ही बनाया जाय।' भगवान् ने 'तथास्तु' कह कर लक्ष्मी जी की प्रार्थना को स्वीकार किया और शीघ्र ही उस राजा को स्वप्न में दर्शन देकर समझाया कि 'विप्रनारायण वेश्या में निरत था, उसके कर्मों का क्षय करने के लिए हमने ही उसका दूत बनकर अपना स्वर्ण कलश उस वेश्या के हाथ में दिया है, वास्तव में विप्रनारायण चोर नहीं है, इसे परिशुद्ध समझो।' राजा की जब नींद खुली तब वे बड़े आश्चर्य चकित होकर यह स्वप्न समाचार मन्त्रियों को सुनाया और ब्राह्मण को कारागार से मुक्त करके सम्मान पूर्वक घर भेज दिया।

कारागार से मुक्त होकर विप्रनारायण बड़ा प्रसन्न हुआ, उसे ऐसा लगा कि यह कारागार-मोक्षण मानों संसार सागर से मुक्त होने का सूचक है, तो भी उसे इस बात के लिये बड़ा अनुताप हुआ कि हा! हन्त! मेरा इतना अधिक समय व्यर्थ ही व्यतीत हो गया। वेश्या के संसर्ग से उत्पन्न पाप का प्रायश्चित करने के विचार से वह-"अनुतापादुपरमात् प्रायश्चित्तोन्मुखत्वतः। तत्पूरणाच्चापराधाः सर्वे नश्यन्ति पादशः।"="यदि पापी अपने पापों के प्रति अनुताप करने लगे, पापों से विरत हो जाय, प्रायश्चित्त करने को तैयार हो जाय, और उस पाप से जो त्रुटि हुई है उसकी पूर्ति करदे, तो सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥" इस शास्त्रार्थ का अनुचिन्तन करते हुए उच्चकोटि के ज्ञानी और सदाचारी महापुरुषों के पास जाकर अपने सम्पूर्ण कुकर्मों को बताया और प्रार्थना किया कि 'आप लोग मुझे समुचित प्रायश्चित्तों का विधान बताकर अनुगृहीत करें।' महापुरुषों ने बताया कि 'परम भागवतों के श्रीपाद-तीर्थ का पान करना ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है।' इस बात को अच्छी प्रकार से समझकर विप्रनारायण ने वैसा ही किया और विशुद्ध हो गया।

इसके बाद वह पहिले ही के समान भगवान् की सेवा में और भागवतों की सेवामें निरत हो गया। उसने सुदृढ़ रूप से निश्चित कर लिया कि 'भागवतों की सेवा, भगवत्सेवा से भी अति श्रेष्ठ है। उन्होंने अपने अनुष्ठानों के द्वारा भागवत निष्ठा की श्रेष्ठता को सर्वत्र प्रख्यात कर दिया, इसी से वे 'भक्तांघ्रिरेणु'—'भक्तों के चरणों की धूलि' इस नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्रीभगवान के निर्हेतुक कृपा कटाक्षके प्रभावसे तत्त्व, हित, पुरुषार्थों को वे हस्तगत बदरीफल तरह विशदरूप से जानते थे, सर्वज्ञ बन गये थे। इसलिये श्रीभगवान की आज्ञा से श्रीशठकोप स्वा इत्यादि दिव्यसूरियों की गोष्ठी में वे भी गिनाये गये हैं। वे जगत्प्रसिद्ध वैभव से युक्त दो दिव्य ग्रन्थों का निर्माण किये थे। वे दोनों दिव्य-ग्रन्थ श्रीवैष्णवों को नित्य अनुसन्धान करने योग्य हैं एक तिरुमाले अर्थात् मालाग्रन्थ कहलाता है। दूसरा तिरुप्पल्लियेलुच्चि अर्थात् प्रबोधनग्रन्थ कहलाता है। द्राविड-भाषा में यह प्रसिद्ध कहावत है कि 'श्रीमालां यो न जानाति न स जानाति माधवम्' अर्थात् श्रीमाल-ग्रन्थ को जो नहीं जानता है, वह श्रीमाधव भगवान को नहीं जानत इस कहावत से श्रीमालग्रन्थ की महिमा सबकी समझ में आ जायेगी। प्रबोधनग्रन्थ भी स भक्तों को हर रोज अनुसन्धान करने योग्य ग्रन्थों में पूर्वाचार्यों से गिनत किया गया है। इससे इ का प्रभाव भी समझ में आजायगा॥

मत्स्यांघ्रिरेणु-सुरेयं मयमिदमादरेण हृदि दधताम्।
भगवद्-भागवतांघ्रिषु भक्तिर्विपुलाऽमलाऽतुला विलसेत्॥

अर्थ—श्रीमत्स्यांघ्रिरेणु स्वामीजी के इस वैभव को हृदय में धारण करनेवाले महानुभावों के श्रीभगवान और भागवतों के श्रीचरणों में विपुल निर्मल और लोकोत्तर भक्ति बढ़ेगी॥

इति श्रीमत्स्यांघ्रिरेणु स्वामीजी का वैभव समाप्त

॥ १०—श्रीमुनिवाहन-सूरिजी का वैभव ॥

कृत्तिकेऽसि रोहिण्यामुदितस्य महीतले। श्रीपालसूरेर्महिमा माहिष्ठः प्रतिपाद्यते॥

अर्थ—भूलोक में कृत्तिका मास में रोहिणी नक्षत्र में अवतार लेनेवाले श्रीपालसूरिजी की अपार महिमा कही जाती है॥

चोलमण्डल में पांच राजनगर प्रसिद्ध हैं। उन में निचुलापुरी एक है, जिसे द्राविड-भाषा में 'उरैयूर' कहते हैं। यहाँ पर पहिले एक समय राजा धर्मवर्मा की पुत्री के रूप में नीला देवी ने अवतार लिया था। इसी निचुलापुरी में किसी ब्राह्मण के भवन में कृत्तिकामास में शुभ रोहिणी नक्षत्र में एक दिव्य शिशु प्रगट हुआ। उस शिशु को वहां रहने वाले एक मनुष्य ने देखा, जो पञ्चम जाति का था। वह मनुष्य इस दिव्य शिशु को देखकर सोचने लगा कि 'मैंने जन्म जन्मान्तर में जितने पुण्य किया था, उन सब पुण्यों का फल आज मिल गया। हम को बहुत वर्षों से पुत्र नहीं है

इससे बहुत दुःख होता रहा, उन तमाम दुःखों को दूर करने के लिये ही श्रीभगवान इस सुन्दर शिशु का दर्शन कराये हैं।' अनन्तर उस शिशु को हाथ में लिया, पत्नी को दिया, वे दम्पति गोक्षीर इत्यादि शुद्ध आहारों से उस शिशु का संवर्धन करने लगे॥

इस प्रकार ये महापुरुष शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे, केवल भगवान् की कृपा से ही इनका अवतार हुआ था, इसलिये लौकिक विषयों में इनकी थोड़ी भी आसक्ति नहीं हुई, केवल भगवान् के चरण कमलों में ही इनका चित्त-भ्रमर आसक्त रहता था, ये वीणा को बजाने में और गाने में बड़े प्रवीण थे, इसी से 'पाणसूरि' इस नाम से प्रसिद्ध हुए। नारद महर्षि के समान ही ये भी उच्च कोटि के ज्ञानी और वैरागी थे, संगीत कला में कुशल थे।

महाभागवतों में श्रेष्ठ और गायकों में शिरोमणि होने के कारण इनके मनमें इच्छा हुई कि सङ्गीत-कैङ्कर्य के द्वारा श्रीरङ्गनाथ भगवान का मुखोल्लास किया जाय। इसी विचार से ये निचुलापुरी से श्रीरङ्गम् चले गये। जब ये श्रीरंगम् पहुँचे तब उन्होंने विचार किया कि 'नीच कुल में मेरा पालन-पोषण हुआ है, श्रीकावेरी गंगा के मध्य में विराजमान श्रीरंगम् दिव्यक्षेत्र में मैं कैसे अपना अपवित्र पैर रखूं?' इसी विचार से चकितचित्त होकर ये दक्षिण कावेरी के किनारे ही कुछ दूर पर बैठ गये, वीणा को बजा-बजा कर श्रीरंगनाथ विषयक दिव्य और भव्य कीर्तन करने लगे, उनका वह श्रीहरि-कीर्तन बड़ा अच्छा और मनोहर था, जिससे किन्नर और गन्धर्व लोग भी लज्जित हो गये।

बहुत पहिले की बात है, 'श्रीतोताद्रि के पास तिरुक्कुरुङ्गुडि नाम के दिव्य क्षेत्र में मातंग जाति के एक परम भागवत रहा करते थे, उनका नाम था 'नम्पाडुवान्'। वे श्रीभगवान के विषय के गीत गा गा कर अपना काल-यापन करते थे, उन्होंने कैशिक राग की महिमा से शरण में आये हुए ब्रह्मराक्षस को भी पवित्र करके सद्गति प्रदान की थी और स्वयं भी संसार सागर से उत्तीर्ण हुए थे।' इनसे भी अधिक प्रभावशाली और भक्त-श्रेष्ठ थे, ये श्रीपाणसूरि। इन्होंने प्रतिदिन प्रातःकाल दक्षिण-कावेरी के किनारे बैठकर भगवद्-गुण-गान द्वारा काल-क्षेप करने का नियम सा बना लिया था। श्रीरंगनाथ भगवान् को इनके गायन से बड़ी प्रसन्नता होती थी। जिस समय ये श्रीभगवान के गुणों का गान करते थे, उस समय इतने तल्लीन हो जाते थे कि इन्हें अपने शरीर की सुध बुध तक नहीं रहती थी, इनके शरीर में पुलकावली हो जाती थी, नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगते थे, यहां तक कि शरीर के प्रत्येक अवयव एक विचित्र प्रकार से विकृत हो जाते थे।

इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर एक दिन एक विचित्र घटना हुई; बात यह है कि श्रीरंगनाथ भगवान के महास्नान के लिए एक ब्राह्मणोत्तम प्रतिदिन गंगा जल ले जाया करते थे उनका नाम था 'श्रीलोक-सारंग-महामुनि'। एक दिन जब वे जल लेने के लिये स्वर्ण कलश लेकर कावेरी-गंगा पहुँचे, तब कुछ दूर बैठे हुए श्रीपाणसूरि का—जो कि अद्भुत जातिमें पालित पोषित होनेके कारण

कहते समझे जाते थे—देखकर दुखी होते हुए बड़े ज़ोर से डांटा कि 'रे अधम! दूर हट जा'; किन्तु श्रीरामानुजजी का चित्त तो भगवान के चरण कमलों में इतना तल्लीन था, कि उन्हें बाहरी विषयों का कोई भान ही नहीं हो रहा था। "मान्धकारवति मान्धकारोति मान्धद् विजानाति" इस श्रुति के अनुसार भगवान के चरण कमलों के अलावा दूसरी कोई वस्तु उन्हें न तो दिखाई ही पड़ती थी, न सुनाई ही पड़ती थी और न ज्ञात ही होती थी; इसलिए वे हटे नहीं, बैठे ही रहे आये।

'दूर हट जा, ऐसा कहने पर भी नहीं हटता, बड़ा घमण्डी है, ढूंठ की तरह जहाँ का तहां बैठा है' ऐसा सुनकर ब्राह्मण का अभिमान रखने वाले द्विजाति के कुछ लोग तेज़ी के साथ वहां पहुँच कर बड़े ज़ोर-ज़ोर से चारण्डाल डांटने लगे कि 'हटजा रे पापी चण्डाल! दूर हट जा' तो भी श्रीरामानुजजी को उन लोगों का कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ा; क्योंकि भगवान के चरण कमलोंमें अत्यन्त आसक्त होने के कारण श्रीरामानुजजी बाह्य विषयों के संपर्क से सर्वथा शून्य होकर अपने आप को भी विस्मृत कर चुके थे। इसलिए अपने स्थानसे थोड़ा भी नहीं हटे, श्रीरामानुज से ही संलग्न रहे आये। वहां पर आकर लोग तो उस प्रकारसे बैठे हुए मूर्तिजी को देखकर समझ गये कि 'यह कुछ ज्ञान-योगी नहीं, किन्तु नाम-योगी है।' इसलिए अपने अपने स्थानों को वापस चले गए। किन्तु कतिपय और मूर्ख द्विजों ने 'किसी प्रकार से भी इसे यहां से ज़बरदस्ती हटाकर ही हम लोग दूसरा काम देखेंगे' ऐसी प्रतिज्ञा की करली और श्रीमूर्तिजी को पत्थरों के टुकड़ों से मारना शुरू कर दिया। पत्थरों से मारते मारते वे थक गये, किन्तु श्रीमूर्तिजी न तो किञ्चिन्मात्र स्खलित ही हुए और न चलायमान ही हुए। श्रीमूर्तिजी की वैसी स्थितिको देखकर वे लोग विस्मित और भयभीत होकर भाग गये। यह घटना, इस सैद्धान्तिक पद्यांश का स्मरण कराती है, कि "गिरयो वर्ष-धारामिर्हन्यमाना न विन्दुः। अनिलूनमाना यमनैर्यथाऽधोक्षज-चेतसः।" अर्थात् "बूंद बराबर भी गिरि कैसे। अधोक्षज चेतन (हनन) मन्द भी जैसे।"

यद्यपि पत्थरों की मार से श्रीरामानुजजी के शरीर में, या मन में, किञ्चिन्मात्र भी व्यथा नहीं हुई, तो भी वात्सल्यिक भक्तजनों के रक्षक भगवान श्रीरंगनाथ के हृदय में वही टीस लगी, उनके ललाट से स्वेद बहने लगा। यह देखकर पूजक बहुत घबड़ाया, आश्चर्य चकित होकर मन्दिर के अधिकारियों के पास गया और बड़े दुःख के साथ निवेदन किया, कि 'हाय, हाय, यह क्या बड़ी आपत्ति आगई; शीघ्र ही कोई प्रबन्ध इसका निर्णय कीजिये।' उन लोगों ने शीघ्र ही यह उत्पात सूचक समाचार राजासे बताया। इस राजाने मन्त्रीके साथ पूर्ण विचार विमर्श करने पर भी जब इसका कोई भी निर्णय नहीं कर पाया कि 'ऐसा क्यों हुआ? और इसके परिहारका उपाय क्या है?' तब इसका समाधान श्रीभगवान के ही चरणकमलों में रख दिया, अर्थात् भगवान स्वयं ही इस विषयका समुचित निर्णय करनेकी कृपा करेंगे, ऐसा निश्चय कर लिया।

इससे पहिले ही किसी समय श्रीरंग-लक्ष्मीजी ने अपने प्राण-नाथ श्रीरंगनाथ भगवान् से प्रार्थना की थी, कि 'हे नाथ ! श्रीपाणमूरि बहुत दिनों से हम दोनों का नित्यानुसन्धान कर रहा है, उसे तो हम लोगों के पास ही रहना चाहिए, वह दूर क्यों रहता है ?' इस प्रार्थना के उत्तरमें लक्ष्मीपति श्रीभगवान् ने कहा था, कि 'शीघ्र ही वह हमलोगों के पास रहने लगेगा।' श्रीलक्ष्मीजी के इस मनोरथ के पूर्ण होने का समय आ गया, और श्रीपाणमूरि जी के सर्वाधिक वैभव के प्रकाशन का भी समय उपस्थित हो गया। 'भगवान की प्राप्ति में न तो कोई जाति साधक है और न बाधक ही है, केवल एक भक्ति ही साधक है, यही सम्पूर्ण शास्त्रोंके सार अर्थ का तत्त्व है' इस बातको विख्यात करने के लिये श्रीरंगनाथ भगवान्ने श्रीलोकसारङ्ग महामुनि को स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'श्रीपाणमूरि जी का चरित्र बड़ा पवित्र है, वे भक्ति के भूषण हैं, भागवतों में अग्रगण्य हैं, तुम उन्हें अपने कन्धे पर चढ़ाकर शीघ्र ही यहाँ ले आओ।' श्रीमहामुनिजी ब्राह्ममुहूर्त में शयन से उठे, स्वप्न में प्राप्त आज्ञा का स्मरण करके बड़े विस्मित हुए, अपनेको धन्य-धन्य माना और भगवान की उस आज्ञाको सर्वत्र प्रख्यात करके बड़े भारी ब्राह्मण समूह के साथ श्रीकावेरी-गङ्गाके किनारे गये, वहां स्नान किये, श्वेत-वस्त्र धारण किये, द्वादश तिलक लगाये, प्रातःकालिक सन्ध्यावन्दन करके श्रीपाणमूरिजीके पास गये, उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भगवान की अकारण करुणा जन्य निरुपम आज्ञा का निवेदन किया।

जिसे सुनकर श्रीपाणमूरिजी ने अपनी निकृष्टता को बताते हुए "मैं अपने अत्यन्त अपवित्र पैरोंको रखकर परमपावनी श्रीरंगभूमिको कैसे दूषित करूं ? मेरे स्वरूपके सर्वथा विरुद्ध यह आदेश क्यों हुआ ? यह पामर प्राणी भगवान के इस आदेशका पालन कैसे करे ? " ऐसा निवेदन किया और बड़े संकुचित हुए।

श्रीमहामुनिजी ने कहा, कि 'आप श्रीरंगभूमिमें पैर न रखें, जिस प्रकार भगवान श्रीगरुडके कन्धे पर चढ़ते हैं, उसी प्रकार आप इस दास के कन्धे में चढ़कर मन्दिर पधारें, भगवान् ने दास को ऐसी ही आज्ञा दी है। इस प्रकार दासका जीवन भी धन्य हो जायगा।' यह सुनकर श्रीपाणमूरिजी ने हाथ जोड़कर नत मस्तक होकर कहा कि "आः कष्टम् ! कष्टम् ! आप यह क्या कह रहे हैं ? अथवा, मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? मेरा शरीर कांप रहा है, मेरा हृदय धड़क रहा है। यह दास तो आप जैसे भागवतों के चरण कमलों में अपना शिर तक रखने योग्य नहीं है, कन्धे पर चढ़ने की तो बात ही दूर है, दास इतना साहस कर ही कैसे सकता है ?' ऐसी प्रार्थना करते करते उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया, गला कँध जाने से स्वर गद्गद् हो गया, नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी।

श्रीमहामुनीजी ने बड़ा आग्रह किया और बताया कि किसी प्रकार भी भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नहीं है, अन्ततः श्रीपाणमूरिजी को भगवदाज्ञा पालन के लिये राजी कर लिया;

क्योंकि 'परमात्मा के अत्यन्त परतन्त्र रहना ही जीवका स्वरूप है' इस बात को जानने वाले के लिए भगवान की आज्ञा का पालन करना ही सर्वथा समुचित होता है। श्रीमहामुनिजी ने श्रीवालमूरिजी को कन्धे पर बैठा लिया और हाथ जोड़कर 'अमलनादि पिरान' इस अपने अनुपम दिव्यप्रबन्धका अनुसन्धान करने लगे। इस दिव्यप्रबन्ध की प्रथम गाथा के प्रथम चरणमें इस विषय को अंशतः सूचित भी किया है, कि "अडियार्कॅन्नै आल् पडुत्त विमलन्"="भगवान ने मुझे भागवत-परतन्त्र की सीमा भूमिमें निविष्ट कर दिया।"

श्रीमहामुनिजीने श्रीवालमूरिजीको कन्धे पर चढ़ाकर श्रीरंग-मन्दिर से आकर आमोद-स्तम्भ* के पास श्रीशेषशायी भगवान्के सामने उसी प्रकार उतारा, जिस प्रकार आतिवाहिक लोग मुक्तात्मा को ले आकर श्रीधामन् मन्दिरमें अतिमण्डपके भीतर उतारा करते हैं।

इस इतिहासके कारण ही ये आलवार 'मुनिवाहन' कहलाते थे। वे भगवान् श्रीरंगनाथ के दिव्यमंगलविग्रह का 'आपादचूडम्'='नखसे शिख तक' अनुभव करके परमानन्द से पूर्ण हुए, उनके नेत्र उसमें इतने प्रवण हुए कि और किसी विषय की ओर दिनों तक नहीं। वहीं आपने 'अमलनादि-पिरान' नाम से प्रसिद्ध दशगाथात्मक दिव्यप्रबन्ध को—जिसमें भगवान् के दिव्य अवयवों का वर्णन है—गाना किया और प्रबन्ध समाप्त होते-होते वहीं श्रीरंगनाथ के चरणारविन्दों में एक दीप्त ज्योति हो गये। इस अद्भुत संगम को देखकर सब लोग, जो उस समय वहां थे, बहुत ही विस्मित तथा आनन्दित हुए। कहते हैं कि ये आलवार पचास वर्ष तक इस श्रीधामविभूति में विराजमान थे।

आचार्य श्रीवेदान्तदेशिक इन आलवार में बहुत ही प्रवण थे और केवल इन्हीं के प्रबन्ध की एक व्याख्या की है जो 'मुनि-वाहन-भोग' नाम से प्रसिद्ध है।

इत्थं श्रीवालयोगीन्द्रवैभवं व्याचक्षतां सताम्।
काले सांप्रत सायुज्यमच्युतस्य रमापतेः॥

अर्थात्, इस प्रकार श्रीवालमूरि के प्रभाव का व्याख्यान करनेवाले साधुजन ठीक समय पर भगवान् श्रीरंगपति के सायुज्य को प्राप्त करते हैं।

श्रीवालमूरि वैभव समाप्त।

---

*टि०—गर्भमन्दिरके भीतर श्रीभगवानके सामने जो दो खम्भे दृष्टि आते हैं, उन्हें ही 'आमोद-स्तम्भ' कहा जाता है

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

११ ❀ ॥ श्री परकालस्वामीजी महाराज का वैभव ॥ ❀

श्लो ॥ मासे वृश्चिकनामनि कार्तिकभे जन्ममेजुषस्सूरेः ।
श्रीमत्कलिविध्वंसिन उदीरयामः प्रभावमतिहृद्यम् ॥

अर्थ—वृश्चिक मास के कृत्तिकानक्षत्र में अवतार लिये हुए श्रीपरकालस्वामी जी महराज के अति मनोहर प्रभाव को कहते हैं।

चोलमण्डल में "तिरुमङ्गै" नाम से सुप्रसिद्ध एक देश है। वहाँ तिरुनगरी नाम से सुप्रसिद्ध एक दिव्य देश है। उसके समीप "तिरुक्कुरैयलूर" नाम से सुप्रसिद्ध एक दिव्य स्थल है। वहांपर चोलदेश के राजा के सेनापति के पुत्र के रूप में कार्तिकमास के कृत्तिकानक्षत्र में श्रीशार्ङ्ग के अवतारभूत श्रीपरकाल स्वामीजी प्रकट हुए। पिताजीने इस शिशु का नाम "नील" रक्खा। क्रमसे बढ़ता हुआ यह शिशु "परकालसूरि" "कलिध्वंसिसूरि" ऐसे नामों से प्रसिद्ध हुआ। श्रीपरकालसूरिजी बाल्यकाल में ही कुल-क्रमागत धनुर्विद्या में पारंगत हो गये। वे तरह-तरह के आयुधों का चलाना जान गये। अनन्तर चोलराज ने इनका सेनापति के पद पर अभिषेक किया। उस राजाके प्रतिपक्षियों के साथ जब-जब लड़ने का प्रसङ्ग आया, तब-तब हमारे कथानायक स्वयं सेनासमेत आगे जाकर खूब लड़कर उन सब प्रतिपक्षियों को परास्त करते थे। इसलिये इनको सत्रुगण "परकाल" = "शत्रुओं का काल" कहते थे। तब से आपकी 'परकाल' नाम से प्रसिद्धि हुई। अनन्तर चोलराज अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीपरकालजी को "तिरमङ्गै" नामक देश का सरदार बनाया। इससे इनका "तिरुमङ्गै मन्नन्" अर्थात् "तिरुमङ्गै देश का राजा" ऐसा नाम हुआ, आप राजनीति के अनुसार उस राज्य का परिपालन करते रहे।

उस देश में "अण्णन् कोइल" नाम से एक दिव्य देश प्रसिद्ध है जिसे "श्वेत-तटाक" भी कहते हैं। वहांपर एक तालाब है। प्रतिदिन देवलोक से अप्सरायें आकर उस तालाब में जलक्रीड़ा करके चली जाती थीं। उन अप्सराओं में एक स्त्री का नाम था लक्ष्मी। एक दिन वह सुन्दरी अपनी इच्छा से देव रूप को छोड़ कर और मनुष्यरूप को धारणकर उस तालाब के तीरपर कुमुदपुष्पों को चुनती हुई अकेली रह गयी। उस तालाब मे सबेरे स्नान के लिये आये हुए एक श्रीवैष्णव वैद्यजी ने उस स्त्री को देखकर पूछा "आप कौन हैं ?"। वह कन्या बोली कि 'मेरे साथ जितनी स्त्रियां आयी थीं, वे सब हमको छोड़कर चली गयीं, मैं अकेली रह गयी, आप कृपया हमारी रक्षा कीजिये' इस बातको सुनकर वैद्यजी प्रसन्न हुये। सन्तान न होने से जो दुःख था, उसे भी भूल गये, कन्या

की प्रार्थना को मानकर उसे अपने घर पर लाये और पत्नी से बोले कि "श्रीभगवान् ने इस कन्यारत्न को प्रदान किया है, इसका अच्छी तरह परिपालन करो"। पत्नी के हाथ में देकर आपने उस कन्या का कुमुदवल्ली नाम रक्खा। क्योंकि वह कुमुदपुष्पों के चुनते समय प्राप्त हुई थी। धीरे-धीरे वह कन्या विवाहोचित अवस्था को प्राप्त हुई॥ श्रीरामायण में श्री जानकी जी ने अनसूयाजी से कहा है कि "पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वैव मे पिता। चिन्तार्णवगतः पारं नाससादाप्लवो यथा।" "पति के साथ विवाह करने को योग्य अवस्था को प्राप्त हुई मुझको देखकर मेरे पिताजी चिन्ता-समुद्र में पड़ गये और नौकाहीन पुरुषकी तरह पार नहीं पा सके,।" ठीक उसी प्रकार कुमुदवल्ली के पिताजी भी चिन्ता समुद्र में डूब गये कि 'किसके साथ इस कन्या का विवाह किया जाय। गुणगणों से परिपूर्ण इस कन्यारत्न के अनुगुण पतिने भी क्या इस जगत में जन्म लिया होगा?

हमारे कथानायक श्रीपरकालसूरिजी इस कन्यारत्न के आत्मगुण शरीरसौन्दर्य इत्यादि को कई बार सुनकर इस कन्या को देखने के लिये लालायित हो गये। राज्यकार्यों को भी छोड़कर वैद्य-राजजी के घरपर आये, उनसे मिले, संभाषण करते समय इस कन्या को भी देखा। आपको बहुत आश्चर्य मालुम होने लगा। सोचने लगे कि इस तरह का सौन्दर्य और किसी भी कन्या में नहीं देखा गया, अवश्य ही यह कोई दिव्य कन्या है। अनन्तर वैद्यजी से इस कन्या के वृत्तान्त के विषय में पूछने लगे। वैद्यजी ने संपूर्ण वृत्तान्त बता दिया। सुनकर श्रीपरकालसूरिजीने अपनी अन्दरूनी इच्छा को प्रकट किया कि मैं इससे विवाह करना चाहता हूँ। इस बातको सुनकर वैद्यजी बहुत प्रसन्न हुए और कन्या का अभिप्राय जानना चाहा। कन्याने स्पष्ट भाषा में अपना यह सुदृढ़ निश्चय बताया कि "पंचसंस्कारसंपन्न श्रीवैष्णव को छोड़कर और किसी के साथ मैं विवाहित होना नहीं चाहती"॥

श्रीपरकालजी इस अध्यवसाय को सुनकर बहुत अभिनन्दन किये और यह कहकर चल पड़े कि 'मैं कुछ दिनों में पंचसंस्कारसंपन्न होकर आपके यहां आजाऊंगा'। अनन्तर आप सुगन्धवन दिव्यदेश* के अधीश्वर श्रीभगवान् की सन्निधि में प्रार्थनाकर पंचसंस्कार को प्राप्त कर बारह ऊर्ध्वपुण्ड्रों से देदीप्यमान होते हुए विवाह की कामना से कुमुदवल्ली के घरपर आये॥

परन्तु कुमुदवल्ली बोली कि 'साल भर हर रोज आप हजार श्रीवैष्णवों को भोजन कराकर उनके श्रीपादतीर्थ को लेकर अवशिष्ट प्रसाद को पाकर पवित्र हो जाइये। इस प्रकार करने की यदि आप प्रतिज्ञा करेंगे तो मैं आप से विवाह करूंगी। अन्यथा विवाह होना असंभवहै। श्रीपरकालजी कुमुदवल्ली के आत्मगुण भगवद्भक्ति और सौन्दर्य इत्यादि गुणों से आकृष्ट हो जाने के कारण कुमुदवल्ली के सामने इस अशक्य कार्य को करने के लिये सुदृढ़ प्रतिज्ञा करके विवाहकर अपने महल पर लेआये।

---

*यह दिव्यदेश 'कुम्भकोणम्' के पास 'तिरुनरैयूर' इस नाम से प्रसिद्ध है।

प्रतिज्ञा के अनुसार श्रीपरकालजी नित्य भागवतों का आराधन करते रहे, क्योंकि राजा का अपरिमित धन आपके पास रहता था, उसे खर्चकर आप श्रीवैष्णव भोजन कराते रहे। धीरे-धीरे राजा को यह वृत्तान्त विदित हुआ कि श्रीपरकालजी उस धन को खर्चकर प्रतिदिन तदीयाराधन कर रहें हैं। अनन्तर चोलदेश के राजा के द्वारा भेजे गये भट ने श्रीपरकालजी के पास आकर यह राजाज्ञा सुनायी कि 'आप शीघ्र ही संपूर्ण धनको राजा के कोशागार में पहुँचा दें।' आपने उसे टाल दिया। इसके बाद जब-जब कोई भट आकर राजाज्ञा सुनाता था तब-तब श्रीपरकालजी यों कहकर टाल देते थे कि आज पहुँचा दूँगा, सबेरे पहुँचा दूँगा, शामको पहुँचा दूँगा इत्यादि। अनन्तर जब बहुत से राजभट आकर बहुत निर्बन्ध करने लगे, तब आप चिढ़कर फटकारने लगे, तब वे लोग अपना सा मुख लेकर चले गये। राजा इस बातको सुनकर क्रोधान्ध हो गया, आंखें लाल हो गयीं। उसने सेनापति को हुक्म दिया कि जल्दी जाकर श्रीपरकालजी को बांधकर लेआवो। सेनापति भी सेना के साथ जल्दी आकर श्रीपरकाल जी का परिभव करने लगा। तब शूरों में अग्रेसर श्रीपरकालजी "आडल्मा" नामक विख्यात अपने घोड़ेपर चढ़कर सेना के साथ जाकर मारकर शत्रु के सैन्य को तितर बितर करके विजय-श्री से शोभायमान हुए। इस वृत्तान्त को सुनकर राजा स्वयं सेना को लेकर श्रीपरकाल से लड़ने आये, रणांगण में श्रीपरकाल के अपार पराक्रम का अनुभव किये, आश्चर्यचकित होकर प्रसन्न भाव से सराहते हुए श्रीपरकालजी से बोले कि "आपके पराक्रम को देखकर हम बहुत प्रसन्न हैं, आप किसी तरह जल्दी ही कर चुकाने की चेष्टा करें, तबतक के लिये इस मन्त्री के अधीन होकर रहिये"। इस प्रकार कहकर राजा अपनी राजधानी पर चले गये।

उस मन्त्री ने किसी देवालय में श्रीपरकाजजी को बांधकर रक्खा। उस मन्दिर में श्रीपरकाल जी ने तीन दिन तक उपवास किया। तीसरे दिन रात में स्वप्न में आकर दर्शन देते हुए श्रीकांची के श्रीवरदराज भगवान् बोले कि 'आप हमारी कांची नगरी आइये, वहां आपको बहुत सा धन दिया जायगा'। श्रीपरकालजी इस श्री भगवान् की आज्ञापर पूर्ण विश्वास रखते हुए सबेरे मन्त्री से बोले कि 'कांची क्षेत्र में निधि है, वहां आप चल कर अपने धन को ले लीजिये, मन्त्री ने भी मान लिया"। मन्त्री के साथ आप काँची आये। निधि को नहीं पा सके। इससे दुःख के मारे मूर्च्छित हो गये। अनन्तर श्रीवरदराज भगवान् ने स्वप्न में पधारकर अभय देते हुए वेगवती नदी के तट पर निधि के रहने के स्थान को चिह्नों से बताकर अन्तर्धान हो गये। अनन्तर श्रीपरकालजी जगकर प्रसन्न होते हुए भगवान् से निर्दिष्ट स्थल में पहुँचकर निधि को निकालकर राजा को जितना देना चाहिये था उतना देकर, अवशिष्ट धन को ऊंटों में लदाकर लाकर बहुत प्रेम से भागवताराधन करते रहे। राजा भी इस वृत्तान्त को सुनकर आश्चर्यसागर में डूब गये। श्रीपरकालजी पर बहुत श्रद्धा करते हुए श्रीपरकालजी को बुलाकर अच्छी तरह से उपचार किये, श्रीपरकाल से प्राप्त हुए धन को कोशागार में न रखकर श्रीपरकालजी को लौटा दिये, श्रीपरकालजी उससे तदीयाराधन किये।

श्रीवरदराज भगवान् से जो निधि लिया गया था, वह पूरा श्रीभागवताराधन में खर्च हो गया, इससे श्रीपरकालजी को द्रव्यार्जन करने की आवश्यकता हुई। तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है कि "न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत, तद्व्रतम्, तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्' अर्थ—"अपने गृह पर आये हुए किसी भी अतिथि का तिरस्कार नहीं करना चाहिये, यह व्रत है इसीलिये किसी तरह से भी अधिक अन्न को प्राप्त करने के लिये कोशिश करनी चाहिये॥' श्रीपरकालजी मानो इस उपनिषदर्थ को सोचते हुए चोरी में निपुण चार चोरों के साथ जहां तहां जाकर चोरी से द्रव्यों को लाकर भागवताराधन कैङ्कर्य को चलाते रहे। श्रीभगवान् भी इसलिये प्रसन्न हुए कि अकृत्य भी सत्कार्य को निभाने के लिये किया जा रहा है, अतः श्रीपरकाल स्वामी जी को धर्मात्माओं में अग्रेसर मानकर और विशेष कृपा कटाक्ष का पात्र समझकर श्रीभगवान सारे भूषणों से सजकर पत्नी के साथ वैवाहिक ब्राह्मणवेष में उस रास्ते से आये, जिस रास्ते में चोरी करने के लिये श्रीपरकाल जी अपने अनुयायियों के साथ खड़े रहते थे। 'तिरुमणम् कोल्लै' नांमके स्थल में अश्वत्थवृक्ष के नीचे छिपकर बैठे हुए श्रीपरकालस्वामी जी विवाहित भूषणों से अलंकृत वधू वर को आते देखकर अत्यन्त हर्ष मनाते हुए हथियार को लिये हुए परिवार के साथ आकर उन दम्पतियों को डराकर तमाम भूषणों को उतारकर वर के चरणांगुष्ठ में लगे हुए अमूल्य भूषण को जब हाथ से निकाल नहीं सके तब दांतों से निकाला। इसके बाद तमाम वस्तुओं को एक बोरे में बांधकर उठाने लगे तो बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उठा नहीं सके, तब सोचने लगे कि ऐसा क्यों हो रहा है? इसमें कारण क्या है? इसका रहस्य जब समझ में नहीं आया, तब श्रीपरकालस्वामी जी वरको देखकर डांटते हुए बोले कि! हे ब्राह्मण! क्या आपने कुछ मन्त्र प्रयोग कर दिया? जिससे यह बोझा उठाया नहीं जाता, सच बोलो' तलवार दिखाकर डराते हुए श्रीपरकाल जी को देखकर सर्वेश्वररूपी वह वर भी डरते हुए कहने लगा कि "हाँ, सचमुच मैंने मन्त्र का प्रयोग किया है। यदि आपको सुनने की इच्छा हो, तो, आकर उस मन्त्र को सुन लो"। यों बुलाकर श्रीभगवान् सकल वेदों के सार श्रीअष्टाक्षर महामन्त्र का उनके कान में उपदेश देकर झट ही गरुडारूढ होकर श्रीपरकालस्वामी जी को दिव्यदर्शन दिये॥

श्रीभगवान् के चरणांगुष्ठ में लगे हुए अंगुलीयक को निकालने के लिये श्रीभगवान् के चरणारविन्दों को दाँतों से काटने के प्रभाव से, मन्त्रराज का उपदेश मिलने से और दिव्यमङ्गलविग्रह का दर्शन मिलने से श्रीपरकालस्वामीजी का आज्ञानान्धकार समूल नष्ट हो गया, तत्त्वज्ञान की ज्योति का विकास हो गया। श्रीभगवान् का परिपूर्ण अनुभव मिलने से जो आनन्द इनको प्राप्त हुआ, वह मन में जब समा न सका, तब उस आनन्द के परीवाह के रूप में आप के श्रीमुख से एकाएक दिव्यप्रबन्ध प्रकट होने लगे। कविता के प्रभाव से श्रीपरकालस्वामीजी "आशुकवि

मधुरकवि, चित्रकवि और विस्तृतकवि" ऐसे चार प्रकार के विरुदों को प्राप्त किये। श्रीशठकोपस्वामीजी के श्रीमुख से प्रगट हुए चारों दिव्यप्रबन्ध चारों वेदों के सार माने जाते हैं, चारों वेदों के जैसे छः अंग होते हैं, उसी प्रकार द्राविडभाषामय चारों वेदों के अंगरूपी ६ प्रबन्धों को श्रीपरकालस्वामी जी ने प्रकट किया। वे ६ प्रबन्ध, १—पेरिय तिरुमोलि, २—तिरुक्कुरुन्ताण्डगम्, ३—तिरुवेलुकूतिरुक्कै, ४—शिरिय तिरुमडल, ५—पेरिय तिरुमडल, ६—तिरुनेडुन्दाण्डगम्, इन नामों से प्रसिद्ध हैं। श्रीशठकोपस्वामीजी ने अपने दिव्यप्रबन्धों को इमली के पेड़ के नीचे विराजमान रहते हुये ही प्रकाशित किया था, कहीं अन्यत्र गये नहीं। उन दिव्य-देशों के भगवान् ने वहीं आकर श्रीशठकोपस्वामीजी को दर्शन दिया था। किन्तु, श्रीपरकालस्वामीजी ने स्वयं पैदल उन-उन दिव्य देशों में जाकर श्रीभगवान् का दर्शन कर दिव्यबन्धों को प्रगट किया, यह संप्रदायज्ञों का कथन है। श्रीपरकालस्वामीजी ने " वाडिनेन् वाडि" ऐसा प्रारंभकर अपने दिव्य प्रबन्ध के प्रथम दशक में परमकारुणिक श्रीभगवान् से उपदिष्ट श्रीमदष्टाक्षर-महामन्त्र की महिमा का वर्णन किया, अनन्तर यह मंत्र सर्वप्रथम जहाँ प्रगट हुआ था, वहाँ अर्थात् श्रीबदरिकाश्रम जाने के लिये उत्सुक होते हुए अपने स्थान से निकलकर सभी दिव्य देशों में जाकर श्रीभगवान का दर्शनकर गाथाओं से उन उन भगवानों का मंगलाशासन करते हुए सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया।

श्रीसरोयोगी इत्यादि तमाम दिव्यसूरियों को यद्यपि दिव्य देशों में श्रद्धा प्रेम इत्यादि तो था ही। तथापि श्रीपरकालस्वामी जी दिव्य देशों में विलक्षण ही श्रद्धा रखते थे। उपनिषत् में कहा है कि "तमेवं विद्वा नमृत इह भवति, नान्यः पन्था अयनाय विद्यते" अर्थ="उस परब्रह्म को अच्छी तरह जाननेवाला ही मुक्त होता है, मुक्ति के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।" इस प्रकार उपनिषत् में इस सिद्धान्त को सुदृढ़रूप से बताया गया है, कि ज्ञान ही मोक्षसाधन है; किन्तु श्रीपरकालस्वामीजी अपना सिद्धान्त कहते हैं, कि, दिव्यदेशों में श्रद्धा के सिवाय दूसरा कोई मोक्षसाधन नहीं। 'तिरुक्कुरुन्ताण्डगम्' नाम के अपने द्वितीय प्रबन्ध की १६वीं गाथा में इस सिद्धान्त का आपने स्पष्ट निरूपण किया है॥

अपने अनुष्ठान से मेल रखनेवाला उपदेश ही महत्त्व रखता है। इसलिये श्रीपरकालस्वामीजी स्वयं अनेकों दिव्य-देशों में भ्रमण किये थे। बदरिकाश्रम, शालग्राम, नैमिशारण्य, श्रीमदहोबिलं, श्रीवेंकटाचलं इत्यादि दिव्य-देशों में होते हुए श्रीपरकालस्वामी जी श्रीरंगं पहुँचे। वहां श्रीरंगनाथ भगवान् ने विमान, मंडप, गोपुर, प्राकार इत्यादि निर्माण करने के लिये आप को आज्ञा दी। श्रीपरकालस्वामी जी श्रीभगवान की आज्ञा को अच्छी तरह से सम्पन्न करने के लिये अधिक धन की आवश्यकता को समझकर उसे प्राप्त करने के लिये विचार करने लगे। उस समय आपको विदित हुआ कि 'चोलदेश के नागपट्टणम् में बौद्धों के मन्दिर में एक बड़ी भारी सोने की मूर्ति है वह यदि आ जाय, तो, यह कैङ्कर्य अनायास ही सिद्ध हो जायगा।' अनन्तर श्रीपरकालस्वामी जी अपने

श्रीकुरुकापुरी श्रीशठकोपस्वामीजी का अवतार स्थल है। उस कुरुकापुरी के समीप में तिरुक्कोलूर नामका एक दिव्य देश है। वहां मेषमास में चित्रा नक्षत्र में एक अग्रशिखी ब्राह्मणोत्तम के गृह में एक महान् आत्मा ने अवतार लिया। वह श्रीमधुरकविस्वामी जी हैं। जिस प्रकार सूर्योदय के पहिले अरुणोदय होता है, उसी प्रकार आप श्रीशठकोपस्वामी जी के पहिले भूलोक में अवतीर्ण हुए। समय समय पर विधि के अनुसार आप चौल उपनयन इत्यादि संस्कारों से सम्पन्न हुए। वेद वेदांग इत्यादि चौदह विद्या के स्थानों को आपने अध्ययन किया। तत्त्वज्ञानियों के नेता बन कर आप चमकने लगे। कानों में अमृत को बरसाने वाली कविता करने के कारण आप को मधुरकवि ऐसा सुन्दर नाम मिला। आप परम भक्त होने के कारण क्षेत्रों और तीर्थों की यात्रा के लिये उत्सुक हो गये। इसलिये आपने गृह से निकल कर तीर्थाटन करते हुए उत्तर देश के तमाम तीर्थों में परिभ्रमण किया। अन्त में श्रीअयोध्याजी में पहुँचकर श्रीरामचन्द्र भगवान की सेवा करते हुए रहने लगे।

एक दिन आप रात्रि में बाहर आकर दक्षिण दिशा की तरफ देखने लगे। जब आपने आकाश और भूमि को व्यापनेवाले एक दिव्य तेज-पुञ्ज को देखा तब आपके मन में तरह-तरह की तरंगे उठने लगीं कि "क्या कोई गाँव या नगर जल रहा है? अथवा जंगली अग्नि जल रही है?" इत्यादि। आप किसी भी निश्चय पर आ नहीं सके। इस तरह जब आपने हर रोज रात्रि में यही देखा तब आपके मन में यह इच्छा हुई कि "सूर्य चन्द्र और अग्नि इत्यादि तेज-पुञ्जों से अधिक चमकने वाले इस तेज-पुञ्ज का पता लगाना चाहिये।' अनन्तर आप इस तेज-पुञ्ज को लक्ष्य में रखकर वहाँ से निकलकर लम्बे मार्ग को पार कर श्रीकुरुकापुरी में जब पहुँचे तब श्रीशठकोपस्वामीजी के दिव्यविग्रह का ही आपने तेज-पुञ्ज के रूप में दर्शन किया। अनन्तर आप श्रीशठकोपस्वामीजी के शिष्य बन गये। उनके चरणों को ही शरण मानकर वहाँ रह गये। अनन्तर श्रीशठकोपस्वामीजी ने श्रीमधुरकवि स्वामीजी को पञ्चसंस्कारों से संपन्न कर स्वीकार किया, अनन्तर उन्होंने आप को अर्चावतारों की महिमा का वर्णन करनेवाले, अत एव अर्चावतारवेद नाम से प्रसिद्ध, चारों वेदों के सारभूत चार दिव्य प्रबन्धों का उपदेश दिया। अनन्तर ये दिव्यप्रबन्ध श्रीमधुरकवि स्वामीजी के द्वारा लोक में प्रचार में आये।

श्रीमधुरकवि स्वामीजी भरतजी के कैङ्कर्य करनेवाले शत्रुघ्नजी की तरह भागवत निष्ठा को श्रेष्ठ मानते थे, इसलिये आपने परमभागवत तथा आचार्य श्रीशठकोपस्वामी जी को परदेवता के रूप में मानते हुए उनके विषय में "कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु" नामक एक छोटा सा दिव्यप्रबन्ध बनाकर अपनी भागवताचार्य निष्ठा को जगत में प्रकट किया॥ अनन्तर जब श्रीशठकोपस्वामीजी महाराज श्रीवैकुण्ठ पधार गये, तब आचार्य-वियोग को नहीं सहते हुए बहुत दुःख अनुभव किया। धीरे धीरे समाश्वासन पाकर आपने श्रीशठकोपस्वामी जी की कीर्ति को जगत में चारो तरफ फैलाया। फिर श्रीमधुरकवि स्वामी जी समय पर आचार्य के चरणारविन्दों के समीप पहुँच गये॥

अनुयायियों के साथ वहां पहुँचे। उस मूर्ति को उखाड़कर लाने के उपायों का आपने अपने चातुर्य से पता लगाया। अर्धरात्रि में उस मूर्ति को उखाड़कर श्रीरङ्गम् लाये। वहां उसे बेचकर प्राप्त हुए धन से तथा इसी तरह के अन्यान्य उपायों से प्राप्त हुए धन से इस कैङ्कर्य को अच्छी तरह सम्पन्न किया। इसी कैङ्कर्य को लेकर श्रीपराशरभट्ट स्वामी जी श्रीरङ्गराजस्तव में कहते हैं कि 'जित-बाह्य-जिनादि मणि-प्रतिमा अपि वैदिकयन्निव रङ्गपुरे। मणिमण्डप-वप्र-गणान् विदधे परकालकविः प्रणमेमतिं तान्॥' अर्थ=पराजित वेदबाह्य जैनियों की मणिमय मूर्तियों को मानो वैदिक बनाने की इच्छा से उससे स्वर्ण-रत्नमय मंडप प्राकार इत्यादिकों का निर्माण करनेवाले श्रीपरकालस्वामीजी को हम प्रणाम करते हैं॥ शास्त्रों में यह आज्ञा मिलती है कि 'योऽपाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति' अर्थ='जो महानुभाव दुष्टों से धन को छीनकर सत्पुरुषों को प्रदान करते हैं वे बड़े धर्मात्मा हैं' इत्यादि, इस आज्ञा का श्रीपरकालस्वामी ने परिपालन किया। यह शास्त्राज्ञा आप में चरितार्थ होती है। इस प्रकार आप परमाद्भुत अनेक कैङ्कर्यों को करके श्रीरङ्गनाथ भगवान् को प्रसन्न कर श्रीभगवान् की आज्ञा को पाकर पांड्य, केरल देशों के दिव्य देशों में परिभ्रमण किया। वहां विराजमान भगवान् के विग्रहों का दिव्यगाथाओं से मङ्गलाशासन किया, अनन्तर परमपद में श्रीभगवान् की सेवा करने की इच्छा से श्रीभगवान् के चरणों में आर्तप्रपत्ति करके आप श्रीभगवान् की कृपा से तुरन्त ही श्रीवैकुण्ठ पहुँच गये और वहां पर सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थोचित सर्वविध कैङ्कर्य करते हुए आप विराजमान हुए।

एवं श्रीपरकालस्य सूरेर्वैभवमद्भुतम्।
ध्यायतां नियमेन स्युर्ज्ञानभक्तिविरक्तयः॥

अर्थ—इस प्रकार श्रीपरकाल स्वामीजी के अद्भुत वैभव का चिन्तन करनेवाले सज्जनों को ज्ञान, भक्ति और विरक्ति अवश्य प्राप्त होती हैं।

इति श्रीपरकाल सूरीन्द्र वैभव समाप्त।

---

१२ ॥ श्री मधुरकवि सूरिजी का वैभव ॥

श्रीमच्छठरिपु-मुनिवर-शिष्यप्रवरस्य मधुरकवि नाम्नः।
मेषे चित्रोडुनि भुव्यवतीर्णस्य प्रभावमभिदधमः॥

अर्थ=मेषमास के चित्रानक्षत्र में भूलोक में अवतरित हुए श्रीशठकोपस्वामी के शिष्य श्रीमधुरकवि स्वामीजी के प्रभाव का वर्णन करता हूँ।

इत्थं श्रीमधुरकवेः शठकोप-मुनीन्द्र-चरणाश्रयस्य ।
वैभवमात्मनि दधतामाविःस्युः सकलसंपदः क्रमशः ॥

अर्थ = श्रीशठकोपस्वामी जी के चरणों को ही शरण समझनेवाले श्रीमधुरकविस्वामी जी के इस वैभव को मन में धारण करनेवाले सत्पुरुषों को ज्ञान भक्ति वैराग्य इत्यादि तमाम सम्पत्तियां उत्पन्न होंगी।

इति श्रीमधुर कवि सूरिजी का वैभव समाप्त ॥

इस प्रकार श्रीकाञ्ची प्रतिवादिभयङ्कर श्री अण्णङ्गराचार्य स्वामीजी के ग्रन्थों में से 'दिव्यसूरि-कथामृत' का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।